‘ॐ नमो देव्यै महादेव्यै’

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,५०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०४, अक्टूबर १९७८

चित्र-सूची

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
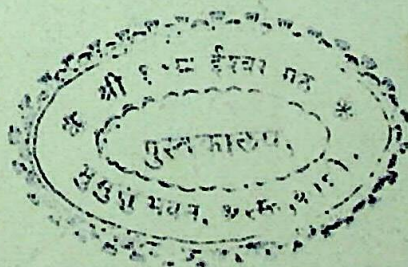
सदाचारनिष्ठ - उदारता

युधिष्ठिर और यक्ष

धर्मराज और धर्म (श्वान रूपमें)

श्रीकृष्ण तथा कर्ण

शल्य तथा दुर्योधन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
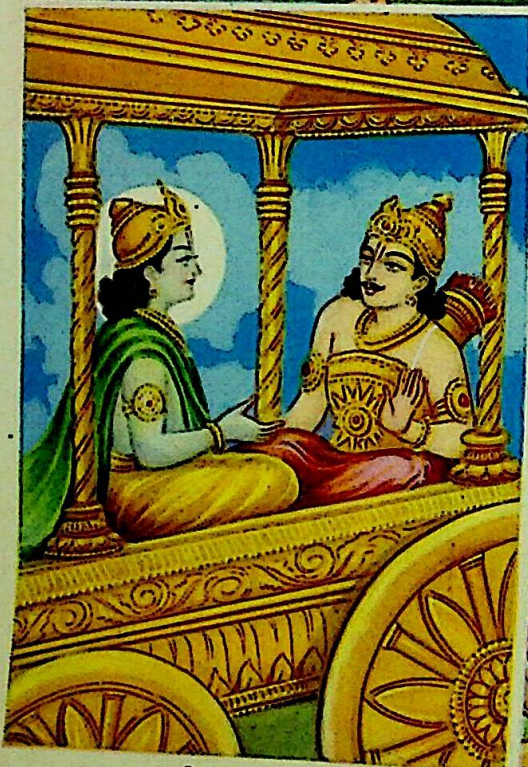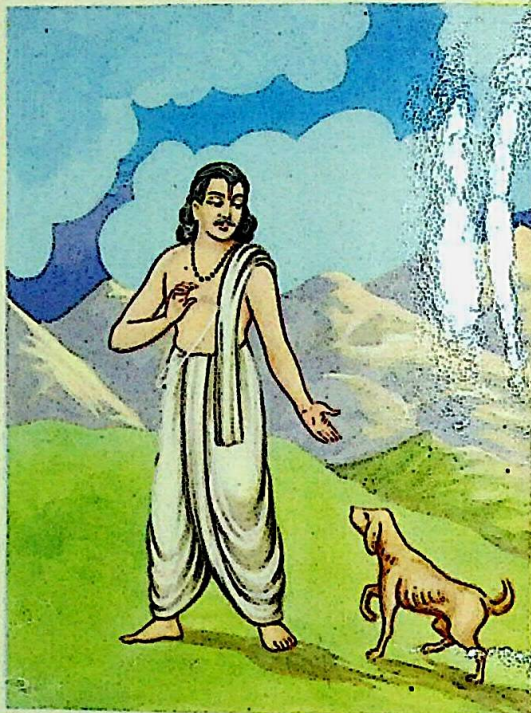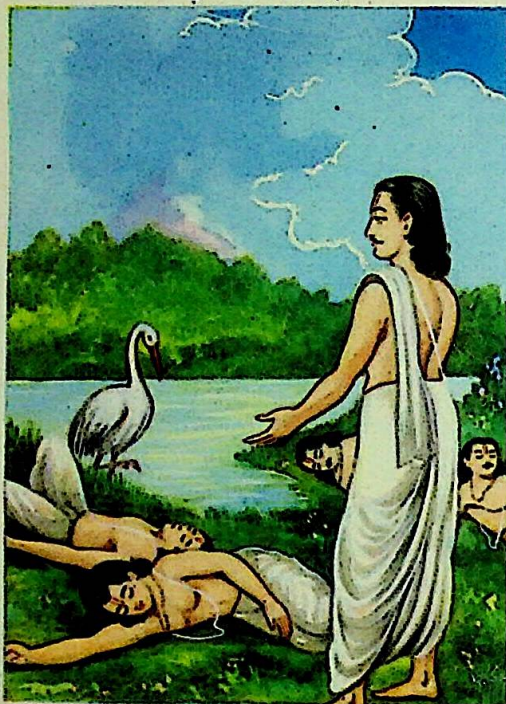
कल्याण

श्रीलाभसुभगः सत्यासक्तः स्वर्गापवर्गदः । जयतात् त्रिजगत्पूज्यः सदाचार इवाच्युतः ॥

वर्ष ५२ } गोरखपुर, सौर कार्तिक, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०४, अक्टूबर १९७८ { संख्या १०
पूर्ण संख्या ६२३

सदाचारनिष्ठ उदारता

सदाचारमय, निष्ठायुत आचार किया करते मतिमान।
उनको ही आदर्श मानकर लोक हुआ करता गतिमान ॥
धर्मराजने धर्मनीतिहित त्याग दिया निजसुख-कल्याण।
'माद्रीसुत ही पुनि जीवित हो, स्वर्गलोक तक सहचर श्वान' ॥
कर्ण वीरवरको समझाया कृपासिन्धुने सुयश बखान।
विनयशीलयुत प्रत्युत्तर था-'चाहे हो गौरव-बलिदान ॥
कौरवपक्ष ही ग्रहण करूँगा, मित्रधर्मका यही विधान'।
शल्य महारथि आये रखने रणमें जब पाण्डवकी आन ॥
पा स्वागत-सत्कार किया तब दुर्योधन हितमें प्रस्थान।
धर्मोचित औदार्य सिखाता 'सदा किया करें प्रतिदान ॥'

कल्याण

एक दिन मृत्यु अवश्य होगी। कब होगी इसका हमें, तुम्हें या किसीको कुछ भी पता नहीं। अभी होश-हवास-दुरुस्त बैठे हो, पर शायद अगले ही मिनट तुम्हारी मृत्युका काल हो। उस समय तुम्हारे सारे काम ज्यों-के-त्यों धरे रह जायँगे। अभी तुम्हें कामसे पलभरको भी फुरसत नहीं मिलती, उस समय आप ही सदाके लिये फुरसत मिल जायगी। अभी शरीरके आरामके लिये तुम बड़े सुन्दर महलोंमें मुलायम गद्दोंपर सोते-बैठते हो, उस समय निर्जन वनमें सियार, कुत्ते और गीधोंसे घिरे हुए डरावने मरघटमें खुली जमीनपर तुम्हारा यह सोने-सा शरीर जलकर खाक हो जायगा। सारे अरमान मनके मनमें रह जायँगे, सारी शेखी चूर हो जायगी। सारी हेकड़ी काफूर हो जायगी। तुम्हारी मदभरी, गर्वभरी और रीसभरी आँखें सदाके लिये मुँद जायँगी।

कैसे निश्चिन्त-से होकर भोगोंमें भटक रहे हो? चेतो, शीघ्र चेतो! फिर पछतानेसे कुछ भी नहीं होगा। इस शरीरसे छूटकर जब तुम परलोकमें जाओगे और वहाँ तुम्हारे यहाँके कमाये हुए कर्मोंका भीषण फल सामने आवेगा, तब काँप उठोगे। यहाँके मौज-मजोंमें जिस सुखका अनुभव करते हो, वहाँ एक-एक मौज़के बदलेमें जो भयानक दण्ड मिलेगा, उसे सुनकर ही मूर्च्छित होने लगोगे। परंतु बाध्य होकर मौजका बदला भोगना ही पड़ेगा। अतः अभी चेत जाओ। शरीर, मन, वचनसे किसी जीवका अहित न करो, किसीके जीको मत दुखाओ। सबका भला चाहो, भला करो, अपना अहित सह करके भी दूसरोंका हित करो। निश्चय रक्खो, तुम्हारा अहित कभी नहीं होगा, ऊपर-ऊपरसे तुम्हें दीखनेवाला अपना अहित परम हितके रूपमें परिणत हो जायगा। सबको परमात्माका स्वरूप समझकर सबकी अहैतुकी सेवा करो। परम कृपालु परमात्माका मन, वाणी और शरीरसे भजन करो। मनसे उनका ध्यान करो, वाणीसे उनका गुणगान करो और शरीरसे—सर्वत्र सबमें उन्हें विराजित देखकर—सबकी आदर, प्रेम और उछाहके साथ सेवा करो।

विषयोंसे मनको हटाकर भगवान्‌में लगाये रहो, विषयोंको विष समझो और भगवान्‌को दिव्य अमृत! भगवान्‌के लिये भगवत्-पूजाके भावसे विषयोंका ग्रहण करना दूषित नहीं है, परंतु कभी भी भोग-बुद्धिसे विषयोंको न चाहो, न भोगो, न उनमें प्रीति करो। श्रीभगवान्‌को प्राप्त करनेकी जितनी साधनाएँ हैं, उनमें वैराग्य और भजन प्रधान हैं। जिसके हृदयमें वैराग्य है, वह बड़ा-से-बड़ा त्याग सहज ही कर सकता है। त्यागसे सारे सद्‌गुण आप ही आ जाते हैं। परंतु वैराग्यके साथ भजनकी आवश्यकता है। संसारके भोगोंसे हटाये हुए मनको साथ-ही-साथ भगवान्‌में लगानेका भी प्रयत्न करना चाहिये।

धन, स्त्री और मान—इन तीनोंका मोह छोड़नेकी चेष्टा करो। धनका महत्त्व हृदयसे निकाल दो, दान और सत्कार्यके लिये भी धन-संग्रहकी चेष्टा मत करो। न सत्कार्यकी प्रवृत्तिके लिये ही किसी धनवान्‌से धन माँगकर धनको महत्त्व प्रदान करो। अपने लोभरहित न्यायोपार्जित धनसे यथायोग्य सत्कार्य करो। उस माता लक्ष्मीको भगवान्‌की गृहिणी समझकर भगवान्‌के चरणोंमें भेंट कर दो, तुम तो माँका दिया हुआ प्रसादमात्र ग्रहण करो। लक्ष्मीको कभी भोग्या मत समझो यदि किसी सत्कार्यमें लगे हो तो जहाँतक हो बिना माँगे जो मिल जाय, उसी धनसे सत्कार्य करो। —श्रीभाईजी

गो-भक्त हिंदू-जनता पूज्या गोमाताकी रक्षा और सेवामें तत्परतासे लगे

[श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य परमपूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

[बहुत दिन पहले मैंने श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्त-श्रीविभूषित ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके श्रीचरणोंमें बैठकर गोमाता-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ये सदुपदेश लिखे थे। यह महत्त्वपूर्ण सामयिक धर्म्यविषय है।]

गोमाताकी अद्भुत महिमा

महामहिमामयी गौ हमारी माता है। उसकी बड़ी ही अद्भुत महिमा है। वह सभी प्रकारसे पूज्य है। समस्त वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण, भागवत, महाभारत आदि गोमाताकी महिमासे भरे पड़े हैं। गोमाताकी रक्षा और सेवासे बढ़कर कोई दूसरा महान् पुण्य नहीं है। हिंदुओंको हमारी आगे कथित बातोंपर अवश्य ही ध्यान देना चाहिये और इन बातोंका मनोयोगसे पालन करना चाहिये।

१—गोमाताको कभी भूलकर भी भैंस, बकरी आदि अन्य पशुओंकी भाँति साधारण पशु नहीं मानना चाहिये। वह सामान्य पशु नहीं है। उसके शरीरमें ३३ करोड़ देवी-देवताओंका वास है। गोमाता परब्रह्म श्रीकृष्णकी परमाराध्या है और गोमाता भवसागरसे पार लगानेवाली साक्षात् देवी है, यह मानना चाहिये।

२—हमें अपने स्थानपर गोमाताको रखना चाहिये और गोमाताकी तन, मन, धनसे सेवा करनी चाहिये।

३—प्रातःकाल उठते ही श्रीभगवत्स्मरण करनेके पश्चात् यदि सबसे पहले गोमाताके दर्शन करनेको मिल जाय तो इसे अपना परम सौभाग्य मानना चाहिये। गोमाताका प्रातःकाल नित्य दर्शन करना चाहिये।

४—गोमाताको देखते ही बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ प्रणाम करना चाहिये।

५—यदि रास्तेमें जाते समय कहीं गोमाता आती हुई दृष्टिमें पड़ जायँ तो उन्हें अपने दाहिनेसे जाने देना चाहिये।

६—जहाँतक हो सके गोमाताका ही दूध पीना और गोघृतका प्रयोग करना चाहिये। विदेशोंसे आये डिब्बों-का दूध कभी नहीं पीना चाहिये। कोटोजम नामक नकली घी, जो आजकल बहुत चला है, उसमें सूअरकी चर्बीका प्रयोग होता है। उसे भूलकर भी कभी प्रयोगमें नहीं लाना चाहिये। गायकी और सूअरकी चर्बीसे बनाया गया साबुन कदापि काममें नहीं लेना चाहिये, बड़ा घोर पाप लगता है।

७—गोमाताको न कभी मारना चाहिये और न कभी सताना चाहिये। उन्हें किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं देना चाहिये; नहीं तो २१ पीढ़ी घोर नरकमें जाती हैं।

८—गोमाताकी ओर कभी भूलकर भी न तो पैर करके बैठना चाहिये और न कभी पैर करके सोना चाहिये। गोमातासे पैरका स्पर्श कभी नहीं होना चाहिये और गोमाताके ऊपर कभी थूकना नहीं चाहिये, इससे बड़ा पाप लगता है।

९—गोमाताको घरपर रखकर कभी भूखी-प्यासी नहीं रखना चाहिये तथा उसे गर्मीकी धूपमें नहीं बाँधना चाहिये। जाड़ेके दिनोंमें उसे सर्दीमें नहीं बाँधना चाहिये। जो गायको भूखी रखता है और जो गायको प्यासी रखता है और गायको धूपसे और सर्दीसे नहीं बचाता तथा गर्मी-सर्दीसे रक्षा नहीं करता, उसका कभी श्रेय नहीं होता है। गायको पूरा भरपेट खिलाना चाहिये और गायको स्वच्छ पानी पिलाना

चाहिये। गायकी खूब सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये और गायको खूब प्रसन्न रखना चाहिये। गायें लोकमाता हैं।

१०—नित्यप्रति भोजन बनाते समय सबसे पहले गायके लिये रोटी बनानी चाहिये गोग्रास निकालना चाहिये और गायको नित्यप्रति रोटी खिलानी चाहिये। गोग्रासका बड़ा महत्त्व है।

११—गौओंके लिये चरगि बनानी चाहिये और उसमें नित्यप्रति शुद्ध पवित्र ताजा ठंडा जल भरना चाहिये, जिसे पीकर गाय-बैल प्रसन्न हों और तुम्हारी २१ पीढ़ी तर जाय। यह हमारा-तुम्हारा कर्त्तव्य है।

१२—अनाथ गायोंके लिये अपनी ओरसे हरी-हरी घासकी गठिया मोल लेकर डाल देनी चाहिये, जिससे गायें पेट भर कर खायँ और सुखकी साँस लें।

१३—भूलकर भी कभी अपनी गाय गोभक्षकोंको नहीं बेचनी चाहिये। गायोंको यवनोंके हाथ बेचना पाप मानना चाहिये। उनकी रक्षा और पोषणका ध्यान उस समय भी रखना चाहिये।

१४—गाय उसी ब्राह्मणको दान देनी चाहिये जो वास्तवमें गायको पाले और गायकी रक्षा-सेवा करे—यवनोंको और कसाईको न बेचे। अनधिकारीको गाय दान देना घोर पाप करना है।

१५—गायको कभी भूलकर भी अपनी जूठी वस्तु नहीं खिलानी-पिलानी चाहिये। गाय माता साक्षात् जगदम्बा हैं। इन्हें जूठी वस्तु खिला-पिलाकर भला कौन सुखी रह सकता है?

१६—धर्मप्राण भारतकी पूज्या गायोंको कृत्रिम गर्भाधान नहीं कराना चाहिये, यह महान् घोर पाप है और अक्षम्य अपराध है। विदेशी साँड़ जो वास्तवमें साँड़ नहीं होते और जो गाय-भैंसे आदिको मिलाकर वर्णसंकर जानवर होते हैं, उन वर्णसंकरोंके वीर्यको विदेशोंसे मँगाकर और उस वीर्यको मुर्गीके अंडेके साथ गायके गर्भाशयमें चढ़ाना तथा उस घोर पापको नस्ल-सुधार बताना घोर पाप करना है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको घोर नरकोंमें ढकेलना है। भारतीय गायोंकी नस्लके सुधारके नामपर उनका नस्ल-संहार करना है। इस घोर पापसे बचना चाहिये।

१७—नित्यप्रति गायके परम पवित्र गोबरसे रसोई-घरको लीपना और पूजाके स्थानको भी गोमाताके गोबरसे लीपकर शुद्ध करना चाहिये।

१८—गायके दूध, गायके घी, गायका दही, गायके गोबर और गोमूत्र—इन पाँचोंके द्वारा तैयार किये गये पञ्चगव्यके द्वारा मनुष्योंके अस्थिगत पाप भी दूर हो जाते हैं। इसलिये समय-समयपर पञ्चगव्यका सेवन करते रहना चाहिये। गायके गोबरमें लक्ष्मीजीका, गोमूत्रमें गङ्गाजीका वास है। इसके अतिरिक्त इनके दैनिक जीवनमें प्रयोगसे पापोंका नाश और गोमूत्रके औषधरूपमें सेवनसे रोगाणु नष्ट होते हैं।

१९—जिस देशमें गोमाताके रक्तका एक भी बिन्दु गिरता है, उस देशमें किये गये योग, यज्ञ, जप, तप, भजन-पूजन, दान-पुण्य आदि सभी शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं और सब धर्म-कर्म भी व्यर्थ हो जाते हैं। आज इस धर्मप्राण भारतदेशमें नित्यप्रति तीस हजारसे भी अधिक गौवें काटी जाती हैं, इससे बढ़कर भला घोर पापकी पराकाष्ठा और क्या होगी? धर्मप्राण भारतसे यदि गोहत्याका काला कलंक नहीं मिटाया गया तो फिर भारतका स्वतन्त्र होना किस कामका? यदि भारत वास्तवमें स्वतन्त्र हो गया तो फिर स्वतन्त्र भारतमें यह गोहत्या क्यों? इस स्वतन्त्रताका राग अलापना कोरा धोखा देना है, और कुछ नहीं है।

२०—यदि तुम नित्यप्रति गोमाताकी पूजा-आरती, परिक्रमा किया करो तो यह बहुत ही श्रेष्ठ कार्य है। पर यदि तुम नित्यप्रति ऐसा न कर सको तो वर्षमें एक

वार गोपाष्टमीके दिन तो कम-से-कम अवश्य ही तुम्हें व्रत रखकर गोमाताकी श्रद्धा-प्रेमसे पूजा करनी ही चाहिये और उस दिन गोमाताकी आरती, परिक्रमा आदि करनी चाहिये एवं गोमाताको मिष्टान्नादि खिलाना चाहिये।

२१—गाय यदि बीमार हो, लँगड़ी-लूली हो गयी हो, अपाहिज हो गयी हो तो उसकी तन-मन-धनसे सदा सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये और उसको ओषधि देनी चाहिये तथा उसकी देख-भाल तत्परतासे करनी चाहिये।

२२—गोरक्षार्थ यदि प्राण भी दे देने पड़ें तो सहर्ष दे देने चाहिये। गोरक्षार्थ प्राण दे देनेसे निश्चित रूपसे श्रीगोलोकधामकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये।

२३—गोमाता यदि किसी खड्डेमें गिर गयी हो, किसी कुएँमें गिर गयी हो अथवा किसी दलदलमें फँस गयी हो तो सब काम छोड़कर सबसे पहले गोमाताको निकालनेका और बचानेका प्राणपणसे प्रयत्न करना चाहिये। यह सबसे बड़ा योग है, यज्ञ है और जप-तप है एवं पूजा-पाठ है तथा दान-पुण्य है, इसे स्मरण रखना चाहिये।

२४—जो गोमाताके बछड़ोंको—बैलोंको हलोंमें जोतकर उन्हें बुरी तरहसे मारते-पीटते हैं, सताते हैं, काँटे चुभाते हैं, गाड़ीमें जोतकर उनके ऊपर उनकी सामर्थ्यसे बाहर बोझा लादते हैं, उन्हें घोर नरककी प्राप्ति होती है और उनके किये हुए दान-पुण्य सब निष्फल हो जाते हैं। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये।

२५—जो जल पीती और घास खाती गायको हटाते हैं, वे पापके भागी बनते हैं। गायको कभी भूलकर भी यदि वह जल पी रही हो अथवा घास खा रही हो तो नहीं हटाना चाहिये।

२६—यदि तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा हो और मन करता हो, परंतु शरीरमें बल न होनेके कारण और पासमें धन न होनेके कारण असमर्थता हो तो चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। पूज्या गोमाताके दर्शन करो, गोमाताकी पूजा करो और सर्वतीर्थमयी गोमाताकी परिक्रमा करो। गोमाताको मधुर पक्वान्न, गुड़ या मीठी रोटी खिलाओ, इस तरह सब प्रकारसे उसकी सेवा करो। बस, घर बैठे तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंका पूजन हो गया, कारण कि गोमातामें समस्त देवताओंका निवास है। इसलिये तुम्हें घर बैठे ही समस्त तीर्थोंकी यात्राका सुफल प्राप्त हो जायगा। यह बड़ा ही सरल और सुलभ साधन है, इसे करनेसे न चूको।

२७—जो लोग गोरक्षाके नामपर, गोशालाओंके नामपर रुपये-पैसे इकट्ठा करते हैं और उन रुपयोंको गोरक्षामें न लगाकर स्वयं ही खा जाते हैं, उनसे बढ़कर पापी और दूसरा कौन होगा। इससे बचना चाहिये। गोमाताके निमित्त आये हुए पैसोंमेंसे एक पाई भी कभी भूलसे भी अपने काममें मत लगाओ और जितना बने अपनी ओरसे गोहितमें तन-मन-धन लगाते रहो। पर गौके हकका द्रव्य और सत्त्व कभी भूलकर भी मत लो। इसीमें भलाई है। गोमाताके नामपर पैसा खानेवालोंको नरकका कीड़ा बनना पड़ता है।

तात्पर्य यह है कि भारतमें रहनेवाले प्रत्येक भारतीय और हिंदूमात्रका गोमाताकी सेवा करनेमें ही सब प्रकारसे श्रेय और कल्याण है।

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृत-वचन

[भगवदाश्रयसे लोक-परलोकका कल्याण]

लौकिक-पारलौकिक समस्त दुःखोंके नाश एवं समस्त लौकिक-पारमार्थिक सम्पत्तिकी सम्प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन है भगवान्‌का अनन्य आश्रय लेकर सच्चे मनसे उनका भजन करना और लौकिक-पारलौकिक समस्त सुखोंके नाश एवं समस्त लौकिक-पारमार्थिक सम्पत्तिके सर्वनाशका साधन है—भोगोंका अनन्य आश्रय लेकर मनसे भगवान्‌को भुला देना। आज हम भगवान्‌को भूल गये हैं और हमारा जीवन केवल भोगोंका आश्रयी बन गया है। इसीसे इतने दुःख, संताप और विनाशके पहाड़ हमपर लगातार टूट रहे हैं। जो लोग क्रियाशील और विविध कर्मसमर्थ हैं, उनको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये भगवान्‌का सतत स्मरण करते हुए समयानुकूल स्वधर्मोचित कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये तथा जो अत्यसमर्थ या असमर्थ हैं, उन्हें आर्त्त तथा दीनभावसे भगवत्प्रीतिके द्वारा धर्मके अभ्युदय एवं विश्वशान्तिके लिये अनन्यभावसे भगवान्‌को पुकारना चाहिये।

हमारी अनन्य पुकार कभी व्यर्थ नहीं जायगी। हममें होना चाहिये द्रौपदीका-सा विश्वास, होनी चाहिये गजराज़की-सी निष्ठा और सबसे बढ़कर हममें होनी चाहिये प्रह्लादकी-सी आस्तिकता और निष्काम भाव, जिसके वचनको सत्य करनेके लिये भगवान् नृसिंहरूपसे खम्भेमेंसे प्रकट हुए—**'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्।'** (श्रीमद्भा० ७। ८। १८)

विपत्ति, कष्ट, असहाय स्थिति, अमङ्गल और अन्याय तभीतक हमारे सामने हैं, जबतक हम भगवान्‌को विश्वासपूर्वक नहीं पुकारते। एक महाशयने एक घटना सुनायी थी। एक घरमें गुंडोंने पतिको पकड़ लिया और दो गुंडे उसकी स्त्रीको नंगी करके उसपर बलात्कार करनेको उद्यत हो गये। दोनों पति-पत्नी निरुपाय थे—असहाय थे। पत्नीने आर्त होकर—रोकर भगवान्‌को पुकारा। उसे द्रौपदीकी याद आ गयी। बस, तत्काल ही वे दोनों गुंडे आपसमें लड़ गये। एकने दूसरेको छुरा मार दिया। उसके गिरते ही पति-पत्नीको छोड़कर शेष गुंडे भाग गये और इस बीचमें पत्नीको कंधेपर उठाकर पतिको बचकर भाग निकलनेका अवसर मिल गया।

भारतकी सती देवियाँ आज द्रौपदीकी भाँति भगवान्‌को पुकारें तो भगवान् अवश्य रक्षा करेंगे। वे तुरंत किसी भी रूपमें प्रकट होकर सती देवियोंके सारे दुःख हर लेंगे और उसी क्षणसे उनको दुःख पहुँचानेवालोंके विनाशकी भी गारंटी मिल जायगी।

दुष्ट दुःशासनके हाथोंमें पड़ी हुई असहाय द्रौपदीने आर्त होकर मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके कहा था—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

(महा० सभा० ६८। ४१-४३)

'हे गोविन्द! द्वारकावासी सच्चिदानन्द प्रेमघन! गोपीजनवल्लभ! सर्वशक्तिमान् प्रभो! कौरव मुझे अपमानित कर रहे हैं। क्या यह आपको मालूम नहीं है? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्तिनाशन जनार्दन! मैं कौरवोंके समुद्रमें डूबी जा रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये! हे कृष्ण! हे

कृष्ण ! हे महायोगी ! हे विश्वात्मा और विश्वके जीवनदाता गोविन्द ! मैं कौरवोंसे घिरकर संकटमें पड़ गयी हूँ । आपकी शरणमें हूँ ! आप मेरी रक्षा कीजिये ।'

द्रौपदीकी आर्त्त पुकार सुनकर भक्तवत्सल प्रभु उसी क्षण द्वारकासे दौड़े आये और द्रौपदीको वस्त्र-दानकर उसकी लाज बचायी । पर दुष्ट दुःशासनने द्रौपदीके जिन केशोंको खींचा था, वे खुले ही रहे—दुःशासनको दण्ड मिलनेके दिनतक । द्रौपदी खुले केश पाण्डवोंके साथ वनमें रहती थी । भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिलने गये । वहाँ द्रौपदीने एकान्तमें रोकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'मैं पाण्डवोंकी पत्नी, धृष्टद्युम्नकी बहिन और तुम्हारी सखी होकर भी कौरवोंकी सभामें घसीटी जाऊँ ! यह कितने दुःखकी बात है ? भीमसेन और अर्जुन बड़े बलवान् होनेपर भी मेरी रक्षा नहीं कर सके । धिक्कार है इनके बल-पौरुषको ! इनके जीते-जी दुर्योधन क्षणभरके लिये भी कैसे जीवित है ? श्रीकृष्ण ! दुष्ट दुःशासनने भरी सभामें मुझ सतीकी चोटी पकड़कर घसीटा और ये पाण्डव टुकुर-टुकुर देखते रहे ।' इतना कहकर द्रौपदी रोने लगी । उसकी साँस लंबी-लंबी चलने लगी और उसने गद्गद होकर आवेशसे कहा—'श्रीकृष्ण ! ये पति-पुत्र, पिता-भ्राता मेरे कोई नहीं हैं, पर क्या तुम भी मेरे नहीं रहे ? श्रीकृष्ण ! तुम मेरे सम्बन्धी हो, मैं अग्निकुण्डसे उत्पन्न पवित्र रमणी हूँ, तुम्हारे साथ मेरा पवित्र प्रेम है और तुमपर मेरा अधिकार है एवं तुम मेरी रक्षा करनेमें समर्थ भी हो ! इसलिये तुम्हें मेरी रक्षा करनी ही होगी ।' तब श्रीकृष्णने रोती हुई द्रौपदीको आश्वासन देकर कहा—

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धासि भाविनि ।
बीभत्सुशरसंछन्नान् शोणितौघपरिप्लुतान् ॥
निहतान् वल्लभान् वीक्ष्य शयानान् वसुधातले ।
यत् समर्थं पाण्डवानां तत् करिष्यामि मा शुचः ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ।
पतेद् द्यौर्हिमवान् शीर्येत् पृथिवी शकलीभवेत् ॥
शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत् ।
(महा० वन० १२ । १२८—१३१)

'कल्याणी ! तुम जिनपर क्रोधित हुई हो, उनकी स्त्रियाँ भी थोड़े ही दिनोंमें अर्जुनके भयानक बाणोंसे कटकर खूनसे लथपथ हो जमीनपर पड़े हुए अपने पतियोंको देखकर तुम्हारी ही भाँति रुदन करेंगी । मैं वही काम करूँगा, जो पाण्डवोंके अनुकूल होगा । तुम शोक मत करो । मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम राज-रानी बनोगी । चाहे आकाश फट पड़े, हिमालय टुकड़े-टुकड़े हो जाय, पृथ्वी चूर-चूर हो जाय और समुद्र सूख जाय, परंतु द्रौपदी ! मेरी बात कभी असत्य नहीं हो सकती ।'

ये द्रौपदीके दुःखोंका नाश करनेवाले भगवान् आज कहीं चले नहीं गये हैं । द्रौपदीके सदृश विश्वासपूर्ण हृदयसे उन्हें पुकारनेवालोंकी कमी हो गयी है । यदि दुःख-सागरसे सहज ही पार उतरना है तो विश्वास करके अनन्यभावसे भगवान्‌को पुकारना चाहिये । भारतके हिंदुओंकी यह श्रद्धा जिस दिनसे घटने लगी, जबसे उनकी प्रार्थनाकी यह ध्वनि क्षीण हो गयी, तभीसे उनपर दुःख आने लगे और तभीसे वे सन्मार्ग और सुखके सुपथसे भ्रष्ट हो गये । अब फिर श्रद्धा-विश्वासके साथ भगवान्‌को पुकारिये । देखिये, आपके इहलौकिक दुःख दूर होते हैं या नहीं और देखिये आपको भगवान्‌की अमृतमयी अनुकम्पासे उनके दुर्लभ चरणारविन्दकी प्राप्ति सहज ही होती है या नहीं !

भगवान् रामका रूप-माधुर्य

(लेखक—डॉ० श्रीज्ञानशंकरजी पाण्डेय, एम्० ए०, डी० लिट्०)

सूर, तुलसी आदि भक्त भावुक कवियोंने राम-कृष्णके अलौकिक सौन्दर्यका अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। बालरूप अपेक्षाकृत अधिक प्रभविष्णु आकर्षक, कोमल और सौन्दर्ययुक्त रहता है। अतएव इन भक्त-कवियोंने उनके बालरूपपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। एक भावदृश्य लीजिये—

'अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिए।
मनमों न बस्यो अस बालक जौ तुलसी जगमें फलु कौन जिए॥

(कवितावली १ । २)

× × ×

घुँघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की॥

(कवितावली १ । २, ५)

शोकको छुड़ानेवाले शोभाधाम रामके ऐसे रूपको देखकर जो चकित न हुए, उनको धिक्कार है—

तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सु-अंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

(कवितावली १ । १)

इसी प्रकार सूर भी कृष्णकी बाल-छविपर मुग्ध हैं—

ललन ! हौं या छवि ऊपर वारी।
बाल गुपाल, लगौ इन नैननि रोग बलाइ तिहारी॥

रामावतार होनेके कुछ पूर्व पितामह ब्रह्माने (अध्यात्म-रामायण १ । २ । ९—१२के अनुसार) भगवान् हरिके जिस दिव्यरूपका अवलोकन किया, उसीसे अनुप्रेरित किंतु कहीं अधिक विमोहक सौन्दर्य-सुधाका पान अतृप्त मनसे मानसके मनु-शतरूपा 'बिस्वबास भगवान्'में करते हैं—

नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

(मानस १ । १४६)

गोस्वामीजीने केवल मानसके बाल एवं उत्तरकाण्डमें ही सात बार अनूप रूप-माधुरीका नख-शिख वर्णन किया है, वस्तुतः तुलसीने भगवान् रामका जितना मर्यादित एवं पूर्ण सौन्दर्यका चित्रण किया है, उतना अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है। जिस रूप-माधुरीका दर्शन तथा उद्दीपन दशरथके मणिमय प्राङ्गण एवं अवधकी वीथियोंमें हुआ, उसीने रूपराशि बनकर योगिराज जनकके सहज विरागी मनमें राग उत्पन्न कर दिया। वाल्मीकि-रामायणमें उस रूपपर मुग्ध हो विदेह जनक विश्वामित्रसे कहते हैं कि 'अपने मनोहर रूपसे अश्विनी-कुमारोंको भी लज्जित करनेवाले एवं स्वेच्छानुसार देवलोकसे पृथ्वीपर उतरकर आये हुए देवताओंके समान ये दोनों राजकुमार कौन हैं (वा० रा० १ । ५० । १८)?'

रामचरितमानसके अनुसार भी महाज्ञानी विदेहराज साँवरे-सलोने कुँवरकी एक बाँकी झाँकीमात्रसे ब्रह्मानन्द छोड़कर न जाने कब उस अपूर्व रूपसिन्धुमें निमग्न हो गये। उनका विदेहत्व जाता रहा—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

(मानस १ । २१४ । ४)

वे अपनी मनःस्थिति छिपा न सके, उसे प्रकट करना ही पड़ा—

सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा॥

(मानस १ । २१५ । २-३)

इसी प्रकार गीतावलीमें जनक रामके अपूर्व सौन्दर्यको देखकर आत्मविस्मृत हो जाते हैं—

ए कौन कहाँ ते आए?
नील-पीत-पाथोज बरन, मन-हरन, सुभाय सुहाए।

(गीतावली १ । ६५)

जानकीमङ्गलका वर्णन तो और अद्भुत है। वहाँ ब्रह्माके सृष्टि-कौशलपर मुग्ध होकर भवसागरकी ही सराहना की गयी है—

प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक विधि बड़ नागर॥
(जानकीमङ्गल ४२)

मिथिलापुरकी नारियाँ भी झरोखोंसे लगकर उस सौन्दर्य-राशिको अपने निर्निमेष नेत्रोंसे एकटक देखती हैं। वेदव्यासजी भगवान् शंकरके शब्दोंमें कहते हैं—

ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलंकृतम्।
गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम्॥
(अध्यात्म० १।६।३१)

मानसकार इसीकी छायाका अनुसरण करते हुए कहते हैं—

जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥

और वे परस्पर प्रेमसे कहती हैं—

………। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥
बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥
× × ×
बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥

इस श्याम-छविरूप अमृतको भरनेके लिये वे अपने नेत्र-कमलरूप कलशोंको खाली कर रही हैं।

साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल कल कलस रितौ री।
(गीतावली १।७७)

यही नहीं, जबसे राम-लक्ष्मण दृष्टिगोचर हुए हैं, तबसे जनकपुरमें एक ही नहीं अनेक विदेह बन गये—

राम-लषन जब दृष्टि परे, री।
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री।
(गीतावली १।७६)

जनककिशोरीके नेत्रोंने तो निजनिधि पहचानकर उस रूपराशिको हृदयमें लाकर सँजो लिया है। साथ ही परम कृपणके सुवर्ण-सदृश उसे सुरक्षित रखनेके लिये पलक-कपाट लगा दिये हैं।

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
(रा० च० मा० १।२३१।२-४)

महाकवि जयदेवके अनुसार उनकी सखियोंसे वह भाव छिप न सका एक सखी कहती है।

'श्यामतामरसदामकोमले रामनामनि मनो मनोभवे।
(प्रसन्नराघव २।२३)

सखि! नील-कोमलाङ्ग रामनामवाले कामदेवमें तुम्हारा मन है—यह मैंने जान लिया।

किंतु इसमें यही बात है कि इन्हें संकोच है, अतः वे कुछ कह न सकीं।

जब सिय सखिन्ह प्रेम बस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी

पर उन्होंने भी व्यङ्ग कर ही दिया—

पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥

—इतनेपर भी सीताजी सहकारवृक्ष* (तरुण, पुष्प-फल-रसयुक्त आम्रवृक्ष) देखनेका बहाना करके थोड़ी देर रुकना चाहती हैं—

'एकं विस्मृतासि! ननु स सहकारपादपोऽवलोकनीयो यस्य वासन्त्या लतया सह सङ्गममभिलपन्ति ममाम्बाः।'
(प्रसन्नराघव २।१५)

* आम्रवृक्षमें जब रस, फल-फूल आ जाते हैं तो उसे सहकार कहते हैं, यह योगवासिष्ठके (५।४३।३२) आदिमें स्पष्ट है—'आम्र एव दशामेति साहकारीं शनैः शनैः॥' 'आम्र एव रसापत्तेः प्रयाति सहकारताम्।' (योगवा० पृ० ११०२ नि० सा० प्रे०) विशेष जानकारीके लिये कुमारसम्भव ४।३८, रघुवंश ४।९,६।६९, ८।६१, ९।३३, कामन्दकनीति १५।६०, महाभारत ३।१५५।६०, माघ १०।३, वासवदत्ता पृ० १३, 'मालतिमाधव' 'बृहत्संहिता' ७७।२७ आदिके मूल एवं उनकी व्याख्याएँ द्रष्टव्य हैं।

'सखि ! एक बात भूल गयी । उस सहकार वृक्षको देखना चाहिये, जिसका मेरी माताएँ वासंती लतासे व्याह करना चाहती हैं ।'

इसी प्रकार मानसकी सीता भी—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥
(मानस १ । २३४)

घर जानेके पूर्व रामभावनिमग्न सीताको पराम्बा भगवती गौरीद्वारा **'सहज सुंदर साँवरो'** वर प्राप्त होनेका आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है । यहाँतक कि धनुष-भङ्गके बाद परमक्रोधी परशुराम भी रामके अपूर्व सौन्दर्यको देखकर चकित हो जाते हैं । उनके नेत्र कामदेवके मदको भी छुड़ानेवाले रामके अपार रूपको देखकर थकित हैं ।

रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥

दुल्हा रामका जैसा मनोरम एवं विशद सौन्दर्य-निरूपण गोस्वामी तुलसीदासजीने किया है, वैसा वर्णन संस्कृत-ग्रन्थोंमें भी अप्राप्य है । वाल्मीकिरामायण (१ । ७३ । ९) और हनुमन्नाटक (१ । ५७) में रामके अलंकृत दुलहे-रूपका सामान्य उल्लेखमात्र है, पर तुलसीका अनूठा वर्णन उससे उत्कृष्ट है; देखिये—

जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे ।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥

जिसका अश्व भी मूर्तिमान् कामदेव है, उस दूल्हेकी रूप-सुषमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ?

जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई ।
आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई ॥

इसीलिये उसे देखनेके लिये देवताओंमें होड़ लग गयी है । विधि-हरि-हरसहित समस्त देवगण दुलहा रामके रूपको देखकर आश्चर्यचकित एवं मन्त्रमुग्ध हैं ।

संकरु राम रूप अनुरागे । नयन पंचदस अति प्रिय लागे ॥
हरि हित सहित रामु जब जोहे । रमा समेत रमापति मोहे ॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने । आठइ नयन जानि पछिताने ॥

आज देवराज इन्द्र ईर्ष्याके विषय बन गये हैं—

रामहि चितव सुरेस सुजाना । गौतम श्रापु परम हित माना ॥
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं । आजु पुरंदरसम कोउ नाहीं ॥

× × ×

मिथिलाकी सँजोयी एवं अवधकी संचित रूप-राशि वनपथपर बिखरती गयी और वह शृङ्गवेरपुरसे लेकर सेतुपर्यन्त बिखरती ही चली गयी । उसे यमुना-पारके पथिकों एवं ग्राम्यबालाओंके अतिरिक्त दण्डकारण्यके ऋषि-मुनियोंने भी बटोरा, सँजोया । कोल-भील आदि वनैले प्राणियोंने तो उसे जमकर लूटा और रंकसे राय बन गये । यही नहीं 'सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया' वाले राक्षस भी उसकी चमकसे चमत्कृत हो उग्र स्वभाव खो बैठे । यही नहीं किंतु साँप-बिच्छुओंका तामस-तीछा स्वभाव भी जाता रहा ।

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी ।
तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥
(रा० च० मा० २ । २६१ । ८)

सेतुपर भी उस रूप-राशिको सँजोनेके लिये जलचरोंकी भारी भीड़ ही लग गयी ।

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा । प्रगट भए सब जलचर बृंदा ॥
(रा० च० मा० ६ । ३ । ३–४)

वनपथपर चलते हुए पथिक रामके अप्रतिम सौन्दर्यको देखकर ग्रामवधुएँ मुग्ध हो सीतासे पूछती हैं कि सखि ! ये नीलकमलदल-सदृश सुन्दर वर्णवाले तुम्हारे कौन हैं ? हनुमन्नाटककार कहते हैं—

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ॥
(हनु० ३ । १५)

तुलसीकी कवितावलीमें भी ग्रामवधुएँ सीतासे पूछती हैं—ये साँवरे सलोने तुम्हारे कौन हैं ?

सीस जटा उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौंहैं ।
तून सरासन बान धरें तुलसी बन-मारगमें सुठि सोहैं ॥

सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहो साँवरेसे सखि रावरे को हैं ?
(२ । २१)

'मानस'की ग्रामवधूटियोंकी भी यही जिज्ञासा है—

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

तुलसीने बटोही रामके स्वरूपका अत्यन्त विशद एवं मार्मिक चित्रण किया है। कोटि मदनको भी विमुग्ध करनेवाली भगवान् रामकी उस अपूर्व छविको मार्गवासी टकटकी लगाये देख रहे हैं—

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥
(रा० च० मा० २ । ११४ । ३)

वह अनूप रूप इतना मोहक है कि—

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

वस्तुतः विधाताकी सृष्टिमें ऐसी सुन्दरता कहीं है ही नहीं; क्योंकि ये तो—

'आपु प्रगट भए बिधि न बनाए।'
(रा० च० मा० २ । ११९ । ३)

यही कारण है कि ब्रह्माको इनसे ईर्ष्या हो गयी—

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥
(रा० च० मा० २ । ११९ । ३)

गीतावलीमें भी तुलसीने पथिक रामके मनोहर सौन्दर्यको कुल (१६से ४२) २७ पदोंमें अपनी हर एक दृष्टिसे परखा है। रामके उसी 'कोटि मनोज लजावनिहारे' रूपको देखकर एक ग्रामीण बाला अपनी सखीसे कहती है—

सजनी ! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद-कमलनि दोउ सील-रूप-आगार॥
(गीतावली २ । २९)

परंतु वह ग्रामवधू उन मनोहर रूपोंको जी भरकर निहार भी न पायी थी कि वे उसके नेत्रमार्गसे ओझल हो गये—

नीके कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए
(गीतावली २ । ३५)

और उस रूप-सौन्दर्यका फिर एक बार नेत्र भरकर अवलोकन करनेकी अभिलाषा अपने मनमें सँजोये ही रह जाती है—

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।
स्यामल-गौर, सहजसुंदर, सखि ! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ॥
(गीतावली २ । ३६)

इसी प्रकार कवितावलीके ८ पदों (अयो० का० १८–२५)में तुलसीने बटोही श्रीरामके सौन्दर्यका आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। सूरकी भी पुरवधुएँ वनपथपर चलते हुए रामकी कोमलता एवं सुन्दरताको देखकर अत्यन्त द्रवित हो जाती हैं और सीतासे पूछती हैं—

सखी री ! कौन तिहारे जात।
राजिवनैन धनुष कर लीन्हें, बदन मनोहर गात॥
(सूररामचरि० ३१)

मार्गके नर-नारी रामके उस अलौकिक रूपको देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं—

तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सकल पुरधाम।
'सूरदास' प्रभुरूप चकित भए, पंथ चलत नर-बाम॥
(सूररामचरि० ३२)

× × ×

एक दिन रावणभगिनी शूर्पणखा पञ्चवटीमें भगवान् श्रीरामके रूप-सौन्दर्यपर आसक्त हो जाती है। उस प्रमदाकी विमुग्ध नैसर्गिक मनःस्थितिका चित्रण मानसकारने कितने शिष्ट-सामान्य ढंगसे किया है—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी
(रा० च० मा० ३ । १६ । ३)

यह रूप उसके हृदयमें इतना घर कर गया है कि विरूप किये जानेपर भी रावणसे अपने वैरीके अद्भुत सौन्दर्यका वर्णन किये बिना नहीं रहती। वाल्मीकि-रामायणमें वह कहती है कि चीर एवं कृष्ण-मृगचर्म धारण करनेवाले दशरथनन्दन दीर्घबाहु श्रीराम विशाल नेत्रोंसे कामदेवके समान सुन्दर हैं—

दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥
कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः ।
(वा० रा० ३ । ३४ । ५-६)

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥
सोभाधाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥
(रा० च० मा० ३ । १२ । २, ४)

क्रूरकर्मा खर एवं दूषण प्रतिशोधकी भावनासे मरने-मारनेको प्रस्तुत हैं। परंतु उनके रूपका जादू इन पाषाण-हृदयोंको भी द्रवित कर देता है। उन्हें विवश होकर कहना पड़ता है—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

इसी रूप-माधुरीका स्मरण करके 'मानस'का मारीच मृत्युके मुखमें जाते हुए भी अपने लोचनको सुफल कर लेना चाहता है—

निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं॥

वस्तुतः यह रूप-सौन्दर्य ऐसा ही आकर्षक एवं विमोहक है। स्वप्नमें भी वह सत्य है। गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहु लखन सिय राम बटाऊ॥
रामधाम पथ पाइहि सोई। जेहि पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

उसी रूपमाधुरीके सुखके लिये शिवने अशिव-वेष धारण कर रखा है—

जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुख महुँ संतत मगन॥
सोई सुख लवलेस, जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति॥
(मानस, उत्तरकाण्ड)

मुरलीधरको ला दे

[शारदीय मङ्गलगीत]

(रचयिता—श्रीनथुनीजी तिवारी)

शशि! तू आज सुधा बरसा दे।
हट गये गगन पटल-बादलके, दिशा स्वच्छ पथ सुधरे थलके;
धरती छोर लिये आँचलके, माँग रही है तुझसे प्यारे! अमृत-रस बरसा दे॥ शशि०॥
फूले कंज, सरित-वन विकसे, बाग बेलि द्रुम लतिका लहसे;
ललित-कुंज कल कलियाँ विहँसे, निर्झर स्वच्छ सरित-चर विलसे, निज सुषमा बिखरा दे॥ शशि०॥
देखि मंजु ऋतु खंजन आये, कवि-उर उपमा नैन सुहाये;
मुख-छबि-हेतु तात तुम भाये, रुचिर-कल्पना-अमिय-मंजु-रस, कवि-कुल-कंठ बहा दे॥ शशि०॥
सागर नित्य हिलोरें लेता, निरखि तुझे अति हिय हुलसाता;
चारु चकोर मोद अति पाता, मोददायिनी मंजु प्रभासे, जगका हृदय खिला दे॥ शशि०॥
पूर्ण कलाधर प्रभुको भाया, छवि विलोकि अँग ओज बढ़ाया;
वृन्दावनमें रास रचाया, वही रूप धर शशि! तू अपना, फिरसे रास रचा दे॥ शशि०॥
आया शरद सुहावन पावन, देव-दनुज-नर-मुनि-मन-भावन;
हिय-हुलसावन, चाप चढ़ावन, पूर्ण कलासे विहँस-विहँसकर, मुरलीधरको ला दे॥ शशि०॥

जगत्का स्वरूप

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आज जो लोग जगत्में उत्तरोत्तर उन्नति देख रहे हैं, उनका लक्ष्य सदाचार, सद्भाव तथा सत्कर्म एवं सबके मूल श्रीभगवान्की ओर नहीं है और न वे भगवान्की प्राप्तिको मानव-जीवनका मुख्यतम लक्ष्य ही मानते हैं। उनका लक्ष्य है—भौतिक उन्नति। आज जो तार, बेतारका तार, रेडियो, मोटर, हवाई जहाज, विद्युत्-शक्ति और परमाणु-शक्ति आदिके आविष्कारसे मनुष्यकी शक्ति बढ़ गयी है उसीको वे उन्नति मानते हैं। अवश्य ही विज्ञानकी उन्नति हुई है, पर उसका प्रयोग किस प्रकार और किस कार्यमें हो रहा है—इसपर विचार करनेसे स्पष्ट पता लगता है कि विज्ञानने जहाँ यातायात, संवादवहन आदिमें सुविधा कर दी है, वहाँ उसने मानव-जगत्के संहारमें भी बहुत बड़ी सहायता की है। इसका कारण विज्ञान नहीं है—इसका कारण है मनुष्यकी मानसिक वृत्ति। उसी परमाणु-शक्तिसे, यदि जगत्के हितकी इच्छा हृदयमें भरी हो तो, बड़ा हित-साधन हो सकता है। किंतु मनमें द्वेष-द्रोह तथा वैर-विरोध रहनेके कारण उसीके प्रयोगसे लाखों जापानी कुछ ही क्षणोंमें कालके गालमें पहुँच गये और आज भी सारा जगत् उसकी भयानकतासे सशङ्कित है। इसपर भी सुना यही जाता है कि अमेरिका और रूसके वैज्ञानिक उससे भी अधिक भयानक किसी शक्तिके आविष्कारमें लगे हैं। पता नहीं, इसका कितना भीषण परिणाम होगा।

वस्तुतः उन्नति तभी समझी जाती है, जब मनुष्यका मन केवल दैवी सम्पत्तियोंका ही निवासस्थान बन जाय, सभी सबका सुख तथा कल्याण चाहने लगें। घृणा और द्वेषके बदले प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें आत्मीयता और प्रेम आ जायँ, स्वार्थ और अधिकारकी जगह त्याग और कर्तव्योंको स्थान मिल जाय एवं क्रोध तथा हिंसाकी जगह क्षमा और साधुता ग्रहण कर ले। जिस युगमें ऐसी बातें होती हैं, वही युग उन्नतिका युग माना जाता है, इसीलिये हिंदू-शास्त्र ऐसे युगको सत्ययुग कहते हैं और यह कालचक्रके अनुसार अपने-आप आया करता है। इस समय कलियुगका प्रारम्भ है और शास्त्रोंके अनुसार अवनतिका समय है। सत्ययुगमें जहाँ धर्मके चार पाद होते हैं, वहाँ कलियुगमें केवल एक पाद रह जाता है। सत्ययुगमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति धर्मानुष्ठानकी ओर रहती है और कलियुगमें भोगोंकी ओर रहती है। भोगकामना जब बढ़ जाती है, तब मनुष्य अर्थका आश्रय लेकर पापकर्ममें लग जाता है और परिणामस्वरूप जगत्की अधोगति हो जाती है।

आजका जगत् जिस सभ्यताकी ओर बढ़ रहा है, उसमें असत्य, लूट-पाट, चोरी, व्यभिचार, अनाचार, छल-कपट, व्यक्तिवाद, अधिकारलिप्सा, उच्छृङ्खलता, द्वेष, द्रोह, पीड़न, शोषण, हिंसा, नृशंसता आदि दुर्भाव और दुराचार द्रुतगतिसे बढ़ रहे हैं और इसको भी उन्नति ही माना जा रहा है। कुछ विचारशील पाश्चात्त्य विद्वानोंने भी इस सभ्यताका खोखलापन देखा है और वे कहने लगे हैं कि यह मानव-जातिका विनाश करके ही छोड़ेगी। श्रीरोमारोलाने कहा है कि 'पाश्चात्त्य सभ्यता एक आग्नेय पर्वतकी गुफाकी बगलमें आ पहुँची है—वह किसी भी क्षण ध्वस्त हो जा सकती है।'

विज्ञानकी उन्नतिने विलास, आरामतलबी, दुराचार, दुर्नीति, निष्ठुरता और हिंसाको बेहद बढ़ा दिया है। मानवकी मानवता ही आज मरणासन्न है। और, जबतक

भगवान् तथा धर्मका आश्रय तथा कर्मफलभोगका भय नहीं होगा; तबतक किसी भी वाद-प्रवर्तन, राज्यपरिवर्तन या नवीन पद्धतिके निर्माणसे पतनका यह प्रवाह नहीं रुक सकता। अवश्य ही इस पतनोन्मुखी कलियुगमें भी वे व्यक्ति सुरक्षित रह सकते हैं, जो भगवान् तथा धर्मका आश्रय लेकर अपने किये हुए कर्मोंके फलभोगमें विश्वासी हैं और इसलिये भगवत्प्रीत्यर्थ सत्कर्म ही करते हैं, परंतु आज जिस गतिसे पतनका यह प्रवाह चल रहा है, उसको देखते तो यही प्रतीत होता है कि अभी जगत्में उच्छृङ्खलता और स्वेच्छाचारिता बढ़ेगी और सहज ही परिणाममें दुःख भी बढ़ेगा।

इस पतनके प्रवाहको उन्नति समझना तथा बतलाना ही यह सिद्ध करता है कि मनुष्य आज पतनकी उस अवस्थाको पहुँच गया है कि जहाँ उसकी विवेककी आँखें ही बदल गयी हैं और वह बड़े गर्वके साथ अनिष्टको इष्ट और अधर्मको धर्म बतला रहा है। यही तामसी बुद्धि है, जो समस्त अर्थोंको विपरीत बतलाती है। और——

'जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः'

इस (उपर्युक्त) भगवद्वाक्यके अनुसार तमोगुणी वृत्तिमें स्थित लोग नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध है कि इस समय जगत् अवनतिकी ओर जा रहा है। उन्नतिकी पहचान है——मानव-मनकी पवित्रता, सुख, शान्ति और साथ ही दैहिक सुख-समृद्धिकी सात्त्विक वृद्धि। अवनतिकी पहचान है——मानव-मनकी अपवित्रता, विषाद, अशान्ति और साथ ही दैहिक दुःख-दैन्यकी तामसी वृद्धि। इस समय जगत्में कौन-सी बातें अधिक बढ़ रही हैं, इसे आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

उन्नति या अवनति

उन्नति-अवनतिकी कसौटी चमत्कारपूर्ण भौतिक साधनोंका आविष्कार नहीं है। उसकी सच्ची कसौटी है समष्टिके मनकी उच्चतम सात्त्विक स्थिति। यदि समष्टिमें गीतोक्त दैवी-सम्पत्ति बढ़ रही है तो समझना चाहिये, उन्नति हो रही है और आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है तो अवनति हो रही है। भौतिक उन्नतिसे न इसका विरोध है, न मेल। बड़ी-सी-बड़ी भौतिक सम्पत्तिके साथ भी दैवी-सम्पत्ति आ सकती है। हमारे प्राचीन युगोंमें भौतिक सम्पत्तिकी पूर्ण प्रचुरता थी, परंतु उसका प्रयोग होता था सात्त्विक-भावापन्न पुरुषोंकी सुबुद्धिके द्वारा वास्तविक जनकल्याणकारी कार्योंमें। आजकी भौतिक सम्पत्ति ऐसी नहीं है। अणुशक्तिका आविष्कार भौतिक उन्नतिका एक अद्भुत उदाहरण है, परंतु मनुष्यकी राक्षसी और आसुरी बुद्धिके कारण उसका प्रथम प्रयोग होता है क्रूरतापूर्ण विपुल जनसंहारमें। आज बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंके मस्तिष्क आसुरी बुद्धिकी प्रेरणासे इसी नर-संहारके अनुसंधानमें लगे हैं और इसमें बड़े गर्वका अनुभव कर रहे हैं। आसुरी-सम्पत्तिका अवश्यम्भावी परिणाम श्रीभगवान् बतलाते हैं——

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १६, १९-२०)

'वे अनेक प्रकारकी कामनाओंसे भ्रान्तचित्त वाले, मोहजालमें फँसे हुए और विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति रखनेवाले लोग अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं। उन द्वेष-हृदय, क्रूरकर्मा पापपरायण नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य [मानव-जीवनके चरम और परम फलरूप] मुझ भगवान्‌को न पाकर कई जन्मोंतक लगातार आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी अधिक बहुत नीची अधम गतिको जाते हैं——नरकाग्निमें पचते हैं।'

इससे सहज ही यह सिद्ध है कि जिस अनुपातसे आसुरी-सम्पत्ति बढ़ रही है, उसी अनुपातसे दुःख भी बढ़ेगा। किसी विषयके विचार पहले मनमें आते हैं, फिर वाणीमें और तदनन्तर वैसा कार्य होता है एवं तब उसीके अनुसार फल होता है। आज जगत्के अधिकतर लोगोंके मनमें दम्भ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, प्रतिहिंसा, मान, अभिमान, ईर्ष्या और असूया आदिके कुत्सित विचार बड़ी तेजीसे बढ़ रहे हैं एवं तदनुसार चोरी, असत्य, लूट, हिंसा, व्यभिचार आदि असत्-कार्योंकी मात्रा भी बढ़ रही है। इसी अनुपातमें बीजफल-न्यायके अनुसार इनका भयानक परिणाम भी अवश्य होगा। यहाँ भी दुःख बढ़ेंगे और परलोकमें भी दुःखोंकी ज्वाला अधिक धधकेगी।

सांसारिक दुःखोंका कारण और निवारण

सांसारिक दुःख उन्हींको होते हैं, जो यथार्थ सुख नहीं, किंतु दुःखसे भरी स्थितिको ही सुख समझकर उसकी प्राप्तिके लिये धन, मान, सम्पत्ति, कीर्ति आदिकी अपेक्षा करते हैं और इन्हींकी प्राप्तिके लिये यत्न करते हैं। सुखके नहीं वरं मिथ्या सुखाभासके पीछे पागल रहनेवालोंकी यही स्थिति होती है। इसमें कभी और कहीं भी सुख नहीं है; दुःख-ही-दुःख है—'दुःखालयम्', 'असुखम्' है, सदा यह। जो वास्तविक परम सुख है, वह किसी बाहरी नश्वर और परिवर्तनशील वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखता—इसीलिये धनी-दरिद्र, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष, विद्वान्-मूर्ख, ऊँच-नीच सभी इसके अधिकारी हैं। आवश्यकता है—बाहरी ओरसे मुख मोड़कर अन्तर्मुख होनेकी—उस परम सुखकी ओर देखनेकी—अतुल अनन्त सुख-समुद्र भगवान्के सम्मुख होनेकी। जहाँ भगवान्के सम्मुख हुआ कि जीवके सारे पाप-ताप, दुःख-क्लेश कटे। ऐसी अवस्थामें सांसारिक सुखकी इच्छा नहीं रहती; और, इस सांसारिक सुखकी इच्छाके न रहनेपर जो सुख होता है, उसकी तुलना सांसारिक मनोऽभिलषित उच्च-से-उच्च वस्तु-प्राप्तिसे होनेवाले सुखके साथ नहीं की जा सकती। उस भक्तिपरिप्लुत निष्कामभावसे उत्पन्न सुखको सूर्य और इस वस्तुजनित सुखको खद्योत कहें, तब भी तुलना ठीक नहीं होती।

जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नहीं रहता, वैसे ही भक्तिका प्रादुर्भाव होनेपर विषयान्धकार भी नष्ट हो जाता है। फिर विषयोंकी प्राप्तिमें हर्ष नहीं होता, उनके चले जाने या नष्ट हो जानेकी आशङ्कासे द्वेष नहीं होता। तब मिलने न मिलनेकी या चले जानेकी कोई चिन्ता नहीं होगी और गये हुए या नये विषयोंके लिये कोई आकाङ्क्षा नहीं होगी।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १७)

लोकदृष्टिमें जन्म, उत्सव, धन-प्राप्ति, मान-प्राप्ति आदि शुभ माने जाते हैं और मृत्यु, धननाश, मान-कीर्तिका नाश आदि अशुभ माने जाते हैं। इन शुभाशुभसे जिसके मनमें किसी प्रकारका भी हर्ष-विषाद, द्वेष या प्राप्तिका मनोरथ नहीं होता, उस शुभाशुभका परित्यागी भक्तिमान् पुरुष भगवान्को बड़ा प्रिय है।

इस विवेचनपर आप विचार कीजिये। फिर खोजिये कि दुःखका कारण क्या है और उससे छूटनेका उपाय क्या है। यह निश्चय मानिये कि भोगोंकी प्राप्तिमें यदि दुःख है तो भोगोंकी प्राप्ति होनेपर भी वह दुःख कभी घटेगा या मिटेगा नहीं—जैसे मलसे धोनेपर मल नहीं मिट सकता। कीचड़से कीचड़ धुलता नहीं, वरं और भी बढ़ता है। अतएव यदि दुःखसे यथार्थ छूटना हो तो भगवान्के आदेशका पालन करके उनका भजन कीजिये—एकमात्र यही उपाय है। भगवान्ने कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'

'इस अनित्य और सुखरहित लोकको प्राप्त करके (यदि सुख चाहते हो तो) मुझको भजो।' यह जगत्, यह शरीर अनित्य और दुःखरूप तथा मिथ्या है—इसे पाकर भगवान्का भजन करना चाहिये। भजन ही जीवनका सार है।

गीताका कर्मयोग—८

(श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायकी विस्तृत व्याख्या)

(लेखक—श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क ९, पृष्ठ-संख्या ३५८से आगे]

श्लोक—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

भावार्थ—

हे अर्जुन ! तू कहता है कि मैं कर्म नहीं करूँगा, पर कर्मोंका स्वरूपसे त्याग हो ही नहीं सकता; क्योंकि कोई भी मनुष्य, किसी भी अवस्थामें, क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। सब-के-सब प्राणी प्रकृतिजन्य गुणोंके द्वारा परवश हुए कर्म करनेके लिये बाध्य हैं। इसका कारण यह है कि प्रकृति कभी किसी भी अवस्थामें अक्रिय नहीं रहती। अतः प्रकृति (स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंमेंसे किसी भी शरीर) के साथ अपना सम्बन्ध माननेवाले सम्पूर्ण भूत-समुदायको सब समय, सब परिस्थितियोंमें परवश होकर कर्म करने ही पड़ते हैं, अर्थात् वे कर्म न करनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं।

अन्वय—

हि, कश्चित्, जातु, क्षणम्, अपि, अकर्मकृत्, न, तिष्ठति, हि, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः, अवशः, कर्म, कार्यते ॥५॥

पद-व्याख्या—

हि—क्योंकि।

कश्चित्, जातु, क्षणम्, अपि, अकर्मकृत्, न, तिष्ठति—कोई भी मनुष्य किसी भी अवस्थामें, क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता।

ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग—किसी भी मार्गमें साधक कर्म किये बिना नहीं रह सकता। यहाँ **'कश्चित्'**, **'जातु'** और **'क्षणम्'**—ये तीनों विलक्षण पद हैं। इनमें **'जातु'** पदका प्रयोग करके भगवान् यह कहते हैं कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्छा, प्रलय, महाप्रलय आदि किसी भी अवस्थामें मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इसका कारण भगवान् श्लोकके अगले चरणमें **'अवशः'** पदसे बतलाते हैं कि प्रकृतिकी परवशताके कारण उसे कर्म करने ही पड़ते हैं। प्रकृति परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील प्रकृतिकी परवशताके कारण शरीरमें परिवर्तन होना, समय नष्ट होना, आयु समाप्त होना आदि क्रियाएँ तो अवश्यमेव होंगी, जिन्हें कोई नहीं रोक सकता।

प्रतिक्षण परिवर्तनको ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कहते हैं। इनमें नये रूपको उत्पत्ति और पुराना होने (नष्ट होने) को प्रलय कहते हैं। उत्पत्ति-प्रलयका यह चक्र ही परिवर्तन कहलाता है। स्थिति तो वस्तुतः है ही नहीं। गम्भीरतापूर्वक विचार करके देखें तो उत्पत्ति भी विनाशके ही प्रारम्भिक भागका नाम है। दृश्यमात्र प्रतिक्षण अदृश्यमें परिवर्तित होता जा रहा है, अतः इसे विनाश भी क्या कहें ? वस्तुतः केवल अभाव-ही-अभाव है। इसके साथ मैं-मेरा करके अपना सम्बन्ध जोड़ लेना महान् भूल है।

साधकको अपनी ओरसे कुछ नहीं करना है। जो विहित कर्म सामने आ जाय, केवल उसे कर देना है। परमात्मप्राप्तिका उद्देश्य होनेसे साधक निषिद्ध कर्म तो कर ही नहीं सकता। साधकको चाहिये कि प्रतिक्षण नष्ट होनेवाले पदार्थ, व्यक्ति आदिकी कामना न करे। विभिन्न प्रकारकी परिस्थितियाँ तो आने-

जानेवाली हैं, हम भूलसे उनका सङ्ग कर लेते हैं। वास्तवमें असङ्गता स्वतःसिद्ध है।

अब समझनेका विषय यह है कि कोई भी मनुष्य किसी भी अवस्थामें क्षणमात्र भी कर्म किये बिना कैसे नहीं रह सकता ?

बहुत-से मनुष्य केवल स्थूल शरीरकी क्रियाओंको कर्म मानते हैं, पर गीता मानसिक (मनकी) क्रियाओंको भी कर्म मानती है। गीताने यज्ञ, दान और तपको (१८ । ५-६) एवं मानसिक, वाचिक और शारीरिक रूपसे की गयी विहित या निषिद्ध क्रियामात्रको भी कर्म माना है (१८ । १५)। इसीलिये सांख्ययोगीके* लक्षणोंका वर्णन करते हुए भगवान् पाँचवें अध्यायके ८वें और ९वें श्लोकोंमें तेरह क्रियाएँ—देखना, सुनना, स्पर्श करना, सूँघना, भोजन करना, चलना, सोना, श्वास लेना, बोलना, मल-मूत्रादिका त्याग करना, वस्तु ग्रहण करना तथा आँखोंको खोलना एवं मींचना बतलाकर यह कहते हैं कि तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी इन क्रियाओंको करते हुए भी ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ अर्थात् वह अपने (ज्ञान) स्वरूपका साक्षात् अनुभव करे। इससे यह तात्पर्य निकला कि जिन-जिन शारीरिक अथवा मानसिक क्रियाओंके साथ मनुष्य अपना सम्बन्ध मान लेता है, वे ही सब क्रियाएँ 'कर्म' होकर उसे बाँधनेवाली होती हैं, अन्य क्रियाएँ नहीं।

भूलसे ही मनुष्योंकी एक ऐसी धारणा बनी हुई है, जिसके अनुसार वे बच्चोंका पालन-पोषण तथा आजीविका—व्यापार, नौकरी, अध्यापन आदिको ही कर्म मानते हैं। इसके अतिरिक्त खाना-पीना, सोना, बैठना, चिन्तन करना आदिको कर्म नहीं मानते। इसी कारण कई मनुष्य व्यापार आदि कर्मोंको छोड़कर ऐसा मान लेते हैं कि 'मैं कर्म नहीं कर रहा हूँ', परंतु यह उनकी भारी भूल है। शरीर-निर्वाह-हेतु स्थूल शरीरकी क्रियाएँ, सोना आदि सूक्ष्म शरीरकी क्रियाएँ, समाधि आदि कारण-शरीरकी क्रियाएँ, चिन्तन आदि मानसिक क्रियाएँ—ये सब कर्म ही हैं। जबतक शरीरमें अहंता-ममता है, तबतक मात्र क्रियाएँ कर्म हैं और उनके साथ हमारा माना हुआ सम्बन्ध है। शरीर प्रकृतिका कार्य है। प्रकृति कभी अक्रिय नहीं होती। अतः शरीरमें अहंता-ममता रहते हुए कोई भी मनुष्य, किसी भी अवस्थामें क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता।

हि—क्योंकि।

सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः अवशः कर्म कार्यते—सम्पूर्ण प्राणी प्रकृतिसे उत्पन्न गुणोंद्वारा परवश होते हुए कर्म करते हैं।

प्रकृतिजन्य गुणोंके द्वारा परवश होनेपर प्रकृतिद्वारा कर्म कराये जाते हैं; क्योंकि प्रकृति एवं उसके गुण सदा क्रियाशील हैं। सातवें अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि सम्पूर्ण प्राणी परा और अपरा प्रकृतियोंके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं (**एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय**)। जीवोंकी उत्पत्ति-विषयक इसी बातको भगवान्ने तेरहवें अध्यायके २६वें श्लोकमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगके नामसे (**क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्**) तथा १४वें अध्यायके तीसरे श्लोकमें गर्भ (जीव) और महत्-ब्रह्म (प्रकृति)के संयोगके नामसे (**मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्**) एवं चौथे श्लोकमें बीज और महत्-ब्रह्मके संयोगके नामसे (**तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता**) कहा है।

* पाँच ज्ञानेन्द्रियोंकी, पाँच कर्मेन्द्रियोंकी, एक स्वप्नकी, एक प्राणोंकी तथा एक अन्तःकरणकी—कुल तेरह क्रियाएँ होती हैं।

यद्यपि आत्मा स्वयं अविनाशी, निर्विकार, अक्रिय तथा प्रकृतिका नियामक है, परंतु जबतक वह प्रकृति एवं उसके कार्य—स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरोंमेंसे किसी भी शरीरके साथ अपना सम्बन्ध मानकर सुख चाहता है, तबतक वह प्रकृतिसे उत्पन्न गुणोंके परवश रहता है (गीता १४ । ५) । इसी परवशताका यहाँ 'अवशः' पदसे कथन हुआ है । नवें अध्यायके ८वें श्लोकमें, आठवें अध्यायके १९वें श्लोकमें एवं अठारहवें अध्यायके ६०वें श्लोकमें भी प्रकृतिके साथ सम्बन्ध माननेसे परवश हुए जीवके द्वारा कर्म करनेकी बात कही गयी है ।

विशेष बात

क्रियामात्र उत्पन्न और नष्ट होनेवाली होती हैं, अर्थात् प्राकृतिक क्रियामात्रकी सक्रिय और अक्रिय दो अवस्थाएँ होती हैं । जैसे, काम करना सक्रिय अवस्था है और सोना अक्रिय अवस्था । वास्तवमें अक्रिय अवस्थामें भी प्रकृति अक्रिय नहीं रहती । अक्रिय अवस्थामें भी सूक्ष्मरूपसे सक्रियता रहती ही है, जैसे किसी सोये हुए मनुष्यको जागनेके समयसे पूर्व ही जगा देनेपर वह कहता है कि मुझे कच्ची नींदमें जगा दिया । इससे यह सिद्ध हुआ कि नींदकी अक्रिय अवस्थामें भी नींदके पकनेकी क्रिया हो रही थी । जब पूरी नींदके बाद मनुष्य जागता है, तब उपर्युक्त बात नहीं कहता; क्योंकि नींदका पकना पूर्ण हो गया । इसी प्रकार समाधि, प्रलय और महाप्रलय आदिकी अवस्थाओंमें भी सूक्ष्मरूपसे क्रियाएँ होती रहती हैं ।

वास्तवमें प्रकृतिकी कभी अक्रिय अवस्था होती ही नहीं; क्योंकि वह प्रतिक्षण परिवर्तनशील अर्थात् बदलनेवाली है । स्वयं आत्मामें कर्तापन नहीं है, परंतु प्रकृतिके कार्य शरीरादिके साथ अपना सम्बन्ध मानकर, उनसे सुख चाहनेसे वह प्रकृतिके परवश हो जाता है । इसी परवशताके कारण स्वयं अकर्ता होते हुए भी वह अपनेको कर्ता मानता रहता है । वस्तुतः आत्मामें कोई क्रिया नहीं होती । वास्तवमें जैसे प्रकृतिद्वारा समस्त सृष्टिकी क्रियाएँ स्वाभाविकरूपसे हो रही हैं, वैसे ही उसके द्वारा शरीरके बाल-यौवन-जरादि अवस्थाएँ और भोजनका पाचन, श्वासोच्छ्वास आदि क्रियाएँ एवं इसी प्रकार देखना, सुनना आदि क्रियाएँ भी स्वाभाविकरूपसे हो रही हैं, परंतु जीवात्मा कुछ क्रियाओंमें अपनेको कर्ता मानकर बँध जाता है ।

यदि साधक शरीरादिके साथ अपना सम्बन्ध न माने और वास्तवमें क्रियाएँ किसमें हो रही हैं—इसे भलीभाँति जान ले तो वह उसी क्षण मुक्त हो सकता है, अर्थात् परवशतासे ऊँचा उठ सकता है ।* कर्मयोगी कामना, फलासक्ति आदिका त्याग करके इस परवशताको मिटा देता है ।

भगवान्‌ने इस श्लोकमें जो बात कही है, वही बात उन्होंने अठारहवें अध्यायके ११वें श्लोकमें भी कही है कि (प्रकृतिसे सम्बन्ध मानते हुए) कोई भी मनुष्य कर्मोंका सम्पूर्णतासे त्याग नहीं कर सकता—**न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।**

(क्रमशः)

* प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील है, पर आत्मामें कोई परिवर्तन नहीं होता । प्राकृतिक पदार्थोंकी वस्तुतः कोई सत्ता नहीं है, क्योंकि प्रतिक्षण बदलते हुए पुरुषका नाम ही पदार्थ है । पदार्थोंके साथ अपना सम्बन्ध माननेसे कोई भी मनुष्य किसी भी अवस्थामें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता । यदि साधक ऐसा वास्तविक अनुभव कर ले कि सम्पूर्ण क्रियाएँ पदार्थोंमें हो रही हैं और पदार्थोंके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है तो वह परवशतासे मुक्त हो सकता है ।

मैं कौन हूँ ?

(लेखक—स्वामी श्रीऑंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

ईशावास्यकी सूर्यस्तुतिकी श्रुति कहती है—

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह । तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥

(ईशावास्योपनिषद् १६)

—'हे सृष्टिके पोषक दिवाकर ! हे एकाकी गमन-कर्ता, प्राण एवं रसके शोषक ! हे प्रजापतिनन्दन ! तुम अपनी रश्मियोंको हटा लो, जिससे तुम्हारा चिर नूतन, कल्याणस्वरूप मैं देख सकूँ; क्योंकि उस पुञ्जमें आदित्यमण्डलस्थ जो पुरुष विद्यमान हैं, वह मैं ही हूँ ।'

'मैं कौन हूँ ?' इस प्रश्नका शास्त्रीय उत्तर जटिल है । अज्ञानसे छुटकारा पाये बिना शास्त्र-धर्मका सम्पादन सम्भव नहीं । 'मैं मानव हूँ, समाजकी एक ईकाई हूँ,' यह कह देनेके पूर्व 'समाज' शब्दकी व्याख्या करना भी आवश्यक होगा । समाजके अङ्ग वे हैं, जिनके सहयोग बिना हमारी जीवन-यात्राके क्रममें बाधाएँ आ सकती हैं ।' जिन सभीसे हम उपकृत हैं उन सभीका हमपर आभार है और उनके प्रति हमारा कर्तव्य भी । अगर हमें इस कर्तव्यबोधका तनिक भी ज्ञान हो तो यह जिज्ञासा स्वयं ही उद्भूत हो उठेगी कि 'मैं कौन हूँ ? जगत् क्या है और मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है ?' इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि विधिपूर्वक साधनाके अन्तमें एक दिन 'मैं कौन हूँ ?' इस प्रश्नके उत्तरमें हम भी ब्रह्मवेत्ता त्रिशङ्कुके स्वरमें स्वर मिलाकर यह कह उठेंगे कि 'अन्तर्यामी रूपसे मैं संसार-वृक्षका प्रेरक हूँ । मेरी कीर्ति उत्तुङ्ग गिरि-शृङ्गकी भाँति महान् है । मैं ऊर्ध्व पवित्र हूँ; क्योंकि ज्ञानसे प्रकाशित होने योग्य पवित्र परब्रह्म रूप कारण-वाला भी तो मैं ही हूँ । मैं भास्करके समान विशुद्ध अमृतमय हूँ । मैं दीप्तिशाली धन, सुन्दर मेधावाला, अमरणधर्मा तथा अक्षय हूँ; क्योंकि मैं अमृतसे सिक्त हूँ ।'

अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणꣳ सवर्चसमम् । सुमेधा अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥

(तैत्तिरीयोपनिषद् १० । १)

संतोंने चित्तको 'मम हृदय भवन प्रभु तोरा' आदिसे भगवान्का मन्दिर माना है । पर इस मन्दिरको बनानेके लिये हमें हृदयको शुद्ध करना होगा । उसे मन्दिर-जैसी शुचिता और गम्भीरतासे मण्डित करना पड़ेगा—काम, क्रोध और लोभ-मोह जैसी कलुषतासे सर्वथा स्वच्छ करना होगा । क्या ऐसा किया है ? फिर—

अहं ब्रह्मास्मि यो वेद स सर्वं भवति त्विदम् ॥

—इत्यादि कहनेका अधिकार हमें तभी प्राप्त हो सकेगा, जब अन्तर्बाह्यमें ऐसा शुद्ध बोध हो जाय । **'देवो भूत्वा यजेद् देवम्'** के अनुसार देवार्चाके लिये, देव बननेके लिये देवताओंका व्यवहार भी चाहिये ।

वैदिक सिद्धान्त है कि जगत्का मूल-तत्त्व ही आत्मरूपमें हमारे अन्तरमें अवस्थित है । शतशः श्रुतियाँ इस सिद्धान्तको प्रतिपादित करती हैं—'देह इन्द्रिय-भावसे मुक्त होनेपर 'मैं अमुक हूँ, अमुकका पुत्र हूँ, यह क्षेत्र और धन मेरा है, मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ' इत्यादि अविद्याजनित संज्ञा नहीं रहती । विदेहराज जनकके यज्ञमें होता अश्वपतिसहित हजारों ब्राह्मणोंको स्तम्भित कर एक सहस्र दिव्यालंकृत गायोंको सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ताकी चुनौती स्वीकार कर हाँक ले जानेवाले

याज्ञवल्क्यने अपनी प्रिय भार्या मैत्रेयीकी शङ्काओंका समाधान करते हुए यही सब कुछ कहा था—

एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न।
प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्यः॥

(बृहदारण्यकोपनिषद् २ । ४ । ११)

'मैं कौन हूँ ?' प्रश्नके उत्तरमें जब 'मैं' शब्द अहं (अहंकार)के प्रविष्ठि होनेकी भूल कर बैठता है, तब वह 'स्व' को विस्मृत कर देता है और उसमें मदोन्मत्तताकी दुर्गन्ध आने लगती है।

अपने अतुलित पराक्रमसे रावणका विनाश कर अयोध्याके वैभवशाली राजसिंहासनपर बैठे चक्रवर्ती नरेश भगवान् श्रीराम विदाई-समारोहमें जनक, युधाजित, प्रतर्दन आदि तीन सौ राजाओंको विदा करते हुए कितने नम्र वचनोंका प्रयोग करते हैं—'मैं तो रावण-वधमें निमित्तमात्र हूँ, वास्तवमें तो आपलोगोंके तेजसे ही रावण मन्त्रियोंसहित सपरिवार मारा गया'—

हेतुमात्रमहं तत्र भवतां तेजसा हतः।
रावणः सगणो युद्धे सपुत्रामात्यबान्धवः॥

(वाल्मी० ७ । ८३ । २४)

इतना ही नहीं, वे मर्यादापुरुषोत्तम अपने भाइयोंतकसे **'अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां महात्मनाम्'** कहकर सीताके विषयमें फैले लोकापवादके प्रति अपना मन्तव्य प्रगटकर यह सिद्ध करनेका प्रयास करते हैं कि 'मुझे प्रजातन्त्रकी मर्यादाओंको पालना ही चाहिये, क्योंकि मैं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ।'

अपनी किशोरावस्थामें ही ताड़का और सुबाहुका वध करनेवाले वे पुरुषसिंह हजार-हजार राजाओंसे **'टरइ न टारा'** शिवधनुषको कमलनालकी भाँति तोड़कर भी कितने विनीत बने रहते हैं। अपने परिचयको नम्रताकी पराकाष्ठापर पहुँचाते हुए वे ही परशुरामसे कहते हैं—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

(मानस १ । २८१ । ५,७)

'मैं'के 'अहम्'से सर्वथा परे **'कंदुक इव ब्रह्मांड'** उठानेवाले शेषावतार भी **'गुरु पितु मातु न जानउँ काहू'** या **'नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह'** जैसे वचनोंका ही निरन्तर उच्चारण करते हैं। यहाँतक कि धर्माचरणसे विहीन कामान्ध-पतिता रावणभगिनीको भी **'सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा'** कहकर भारतीय सच्चरित्रताका आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

शौर्यकी प्रतिमूर्ति भरत जब एक आदिवासी, अनपढ़ जन-जातिके व्यक्तिको भगवान् रामकी श्रद्धासे आविर्भूत देखते हैं तो उनके मुखसे अनायास निकल पड़ता है—

अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किंकरः।
यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः॥

(अध्यात्म० अयो० ८ । ३३)

'मैं अपने जन्मको तभी सफल मानता हूँ जब मैं भगवान् रामके दासोंका भी दास बन जाऊँ।'

'अतुलितबलधाम' तथा **'ज्ञानिनामग्रगण्य'** से जब प्रथम भेंटके अवसरपर राम उनका परिचय पूछते हैं तो—**'एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान'** कहकर ही उन्हें परितोष नहीं होता, वरन् **'जानउँ नहिं कछु भजन उपाई'** कहते हुए उस परम भजनानन्दीको तृप्तिका अनुभव होता है।

सिंहिका-जैसी छायाग्राहिणीको मारकर सौ योजन विस्तारवाले सागरको पारकर, लंकिनीको अधम गतिसे मुक्त करानेवाले वानरवीर हनुमान् जब अशोकवाटिकामें बैठी माँसे अपना परिचय देते हैं कि 'मैं कौन हूँ ?' तो कितना दीन हो उठते हैं—'वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा पाकर आपकी खोजमें भेजे गये इच्छानुरूपधारी हजारों वानरोंमेंसे एक मैं भी हूँ,—देवि !'

सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः ।
दिक्षु सर्वासु तां देवि विचिन्वन्तः सहस्रशः ॥

गीताके उद्घोषक कृष्ण 'मैं कौन हूँ ?' इसका जो प्रत्युत्तर देते हैं, वह गीताके दशम अध्यायमें वर्णित है । **'अहमात्मा सर्वभूताशयस्थितः'** से प्रारम्भ कर **'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'** कहकर जिस सारगर्भित वाणीमें आत्मतत्त्वका बोध कराया गया है, वह ज्ञानपिपासुओंके लिये तृप्तिका अनूठा उपादान है ।

वैदिक संस्कृतिको एक सूत्रमें आबद्ध करनेवाले तपोनिधि आद्यगुरु शंकराचार्यजी महाराजसे जब शिष्योंने 'मैं कौन हूँ ?'का विवेचन जाननेकी उत्कण्ठा व्यक्त की तो वे झूम उठे—'अरे ! तुम मुझे सांख्य या शैव समझ रहे हो ? क्या तुम्हारे हृदयमें मुझे अन्य धर्मावलम्बियोंके पक्ष-विपक्षका प्रतिपादक होनेकी भावना है ? भूल जाओ ये सब । मेरी दृष्टिमें न कोई जनक है, न जननी ! देव, लोक, वेद, तीर्थ, यज्ञ—इन सबकी मेरे समक्ष क्या तुलना ?-मैं तो कल्याणका साक्षात् रूप हूँ । मंगलका प्रतीक । मैं और कुछ भी नहीं केवल-मात्र शिव हूँ **'शिवः केवलोऽहम्—शिवः केवलोऽहम् ।'**

न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥
न सांख्यं न शैवं न तत् पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥

(शंकराचार्यकृत दशश्लोकी ३-४)

रामके घरपर पहुँचनेका जो सफल प्रयास तुलसीने किया, वही कृष्णके लिये सूरदासने; परंतु जब उनके समक्ष भी 'मैं कौन हूँ ?' का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब न तो वे उपनिषदोंके फेरमें पड़े और न आत्मा तथा ईश्वरकी जटिल गुत्थियोंमें ही उलझे । उन्होंने तो अपनी समस्त श्रद्धा उपास्यके चरणोंमें निवेदित कर कहा—'प्रभो ! मैं तो नीचातिनीच संसारी हूँ । मेरी दीन दशा देखकर हँसते हो ? दूर नहीं करते ?

हरि, हौं महा अधम संसारी ।
आन समुझि मैं बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी ॥
धर्म-सत मेरे पितु माता, ते दोउ गये बिडारी ।
ज्ञान-बिबेक बिरोधे दोऊ, हते बन्धु हितकारी ॥

× × ×

अधिक कष्ट मोहि पर्‌यौ लोक मैं, जब यह बात उचारी ।
सूरदास प्रभु हँसत कहा हौ, मेटौ बिपति हमारी ॥

(सूरसागर, प्रथम स्कन्ध)

मानसके रचयिताने अपने ग्रन्थके सच्चरित्र पात्रोंको 'अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी'से जहाँ निरन्तर दूर रखा है, वहाँ स्वयंको बिना किसी लाग-लपेटके खड़ी बोलीमें प्रस्तुत करनेको उद्यत हैं । 'मैं कौन हूँ ?'—धूर्त ? परमहंस ? राजपूत ? जुलाहा ? नहीं भाई !

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ ।
काहूकी बेटी सों, बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो, मसीद को सोइबो, न लैबो को एक न दैबे को दोऊ ॥

(कवितावली ७ । १०६)

किसीका लेना एक ना देना दो । माँगकर खाना है और देवमन्दिरमें सोना है । तुलसी भले ही किसी देवमन्दिरमें न सोये हों, परंतु गुरु नानकदेव जब एक बार मस्जिदमें खूँटी तानकर सो रहे थे तो मौलवीने जरूर उन्हें फटकारते हुए कहा था—'कौन है तू ?'

'खुदाका बंदा'—नानकने कह दिया ।

और इतना कहनेपर वह मौलवी चिढ़कर बोला था—'खुदाका बंदा है तो खुदाकी ओर पाँव पसारकर तू क्यों सो रहा है ?'

सिक्ख-सम्प्रदायके आदि गुरुने अपने पैर सिकोड़ लिये और बोले—'भूल हो गयी । पर ये तो बता

दीजिये कि खुदा किस ओर नहीं है, ताकि मैं अपने पाँव उधर कर सकूँ ।' मौलवी इस उत्तरसे घुटने टेक-कर बैठ गया, जैसे मस्जिद घूम रही हो ।

'नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहं सनातनः ।'

'मैं कौन हूँ ?' इस प्रश्नका उत्तर मुझे ही देना पड़ रहा है, ऐसा न सोचिये एक दिन उस सेठकी भाँति सभीको देना है जो नग्नावस्थामें यमराजके सामने खड़ा था ।

'कौन हो तुम ?'

'मैं सेठ करोड़ीमल हूँ, महाराज ! मैंने एक धर्मशाला बनवायी थी ।

यमराज चुप हो गये और उन्होंने निकट बैठे चित्रगुप्तकी ओर दृष्टिपात किया । चित्रगुप्तने खाता खोला और कहा--

उस दिन एक भूखे भिखारीको तुमने यह कहकर क्यों खाली हाथ भेज दिया था कि 'जाओ, जाओ ! यहाँ कुछ नहीं है' जब कि तुम्हारे पास सब कुछ था ?'

दो क्षण सेठ करोड़ीमल अवाक् देखते रहे और तीसरे ही क्षण यमराजका घोष उनके कानोंमें पड़ा-- 'जो अन्य प्राणियोंकी पीड़ा न पहचानकर स्वयंके भरण-पोषणमें ही व्यस्त रहता है, वह रौरव नरकका अधिकारी है । ले जाओ इसे ।' और यमदूत उसे ले गये नरकोंमें ।

अतः दुर्लभ मनुष्य-जन्मको प्राप्तकर शास्त्र-संतोंद्वारा निर्दिष्ट अध्यात्मसाधना एवं आत्मचिन्तनमें लगकर शीघ्रातिशीघ्र भगवत्साक्षात्कारके लिये तीव्रतम प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिये, अन्यथा प्रमादग्रस्त प्राणी उपनिषदोक्त **'महती विनष्टिः'**के दुष्परिणामसे कैसे बचेगा । इन सबके लिये भी मनसा कर्मणा सर्वात्मना भगवत्-शरणागति ही परमोपाय है--**'मामेकं शरणं व्रज ।'** (गीता १८ । ६६)

ममता ही मृत्यु है

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् । ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ॥
लब्ध्वा हि पृथिवीं कृत्स्नां सहस्थावरजङ्गमाम् । ममत्वं यस्य नैव स्यात् किं तया स करिष्यति ॥
अथवा वसतः पार्थ वने वन्येन जीवतः । ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते ॥

(महाभारत, आश्व० १३ । ३, ६-७)

'मम' (मेरा)--ये दो अक्षर ही मृत्युरूप हैं और **'न मम'** (मेरा न)--इन तीन अक्षरोंका पद सनातन ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण है । **'ममता'** मृत्यु है और 'ममता न होना' सनातन अमृततत्त्व है । चराचर प्राणियोंसहित सारी पृथ्वीको पाकर भी जिसकी उसमें ममता नहीं होती, वह उसको लेकर क्या करेगा ? (उसका उस सम्पत्तिसे कोई अनिष्ट नहीं हो सकता) अथवा कुन्तीनन्दन ! जो वनमें रहकर जंगली फल-मूलोंसे ही जीवन-निर्वाह तो करता है, पर उसकी यदि द्रव्योंमें ममता है तो वह मृत्युके मुखमें ही विद्यमान है ।

जब श्रीभरतके सदाचारकी परीक्षा ली गयी

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम० ए०)

महात्मा भरतलालजीका चरित जितना ही पावन है उतना अगाध भी है। उसकी गम्भीरताका पता न तो अयोध्यावासियोंको मिला और न जनकपुर-वासियोंको ही। श्रीभरतलालजी जितने साधु थे, उतने भावुक भी। श्रीरामको मनानेके उनके निश्चयको कोई टाल नहीं सकता था। प्रश्न यह अवश्य उठा होगा कि श्रीभरतलालजीके साथ प्रभुके पास कौन-कौन जायँ ? भरतलालजीके साथ गुरु वसिष्ठका जाना राजवंशपरम्पराके अनुकूल था। श्रीरामको प्रभावित करनेके लिये मन्त्रिमण्डल भी जानेको तैयार हो गया। माताएँ रुक नहीं सकती थीं। यह विचार भी अवश्य हुआ होगा कि भरतके साथ सेना जानी चाहिये या नहीं ? माताओंकी सुरक्षाके लिये तो मात्र कुछ सैनिक ही आवश्यक थे। फिर सारी सैन्य-शक्तिको लेकर भरतलाल क्यों चले ? महात्मा भरत भावुकतावश ही सम्पूर्ण सेनाको लेकर चले होंगे। यदि सेना उनके साथ न गयी होती तो निषादराज और वीरवर लक्ष्मणजीके मनमें किसी प्रकारकी आशङ्का न उठी होती।

श्रीभरतलालजीके साथ छोटी-मोटी सैन्य-शक्ति नहीं थी—साठ हजार पैदल और एक लाख घुड़सवार सैनिकोंके सहित आप श्रीरामको मनानेके लिये चले थे।

षष्टिरथसहस्राणि धन्विनो विविधायुधाः।
अन्वयुर्भरतं यान्तं राजपुत्रं यशस्विनम्॥
शतं सहस्राण्यश्वानां समारूढानि राघवम्।
अन्वयुर्भरतं यान्तं सत्यसन्धं जितेन्द्रियम्॥

(वाल्मी० ८३२।४-५)

श्रीभरतलालजीकी विशाल सेनाको देखकर श्रीरामके मित्र निषादराजको महात्मा भरतलालके ऊपर संदेह हो गया। उनके मनमें शङ्का उठी—'प्रतीत होता है कि दुर्बुद्धि भरत स्वयं इस विशाल सेनाके साथ हैं। तभी भरतके रथपर कोविदार ध्वजा फहरा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोगोंको रस्सीसे बाँधकर अपने वशमें करके भरत अयोध्यासे निर्वासित श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मार डालनेकी योजना पूरी करेंगे। ऐसा मालूम देता है कि महाराज दशरथकी समस्त राज्यशक्ति और ऐश्वर्य हस्तगत हो जानेपर कैकेयीपुत्र अब श्रीरामको सर्वदाके लिये समाप्त कर देना चाहते हैं। श्रीराम हमारे मित्र हैं। उनकी भलाईके लिये हमें सावधान होकर उनकी सुरक्षा और सेवाके लिये सन्नद्ध हो जाना है। श्रीराम हमारे स्वामी भी हैं। अतः सभी बलवान् नाविक भोजनसामग्री लेकर यहीं घाटपर डटे रहें। पाँच सौ नौकाओंपर सौ-सौ बलवान् नाविक युद्ध-सामग्री लेकर तैयार रहें। (देखें वाल्मी० २ ८४।२-८)।

निषादराजने वह योजना अपने विश्वासके साथ नहीं बनायी थी। केवल श्रीभरतलालके सैनिकोंको देखकर ही उनके मनमें शङ्का उठी थी। सुमन्त्रकी बुद्धिमानीसे इस शङ्काका समाधान भी अपने-आप हो गया। श्रीभरतलालजीने निषादको सम्मान दिया। समादरपूर्वक उनसे महर्षि भरद्वाजके आश्रमकी ओर जानेवाले मार्गकी पूछ-ताछ की। जब निषादराजको सब कुछ (तथ्य) अवगत हो गया तो श्रीभरतलालका मार्ग प्रशस्त हो गया। संत कवि तुलसीदासजीको इस प्रसङ्गमें शकुन-शास्त्रकी सहायता लेनी पड़ी थी। प्रथम तो निषादराजने आज्ञा दे ही दी थी।

श्रीरामके नामपर मरने-मारनेके लिये हजारों निषाद अपने-अपने हथियार चमकाने लगे। तभी बायें भागमें सहसा छींक हुई। इससे उत्तम शकुनका संकेत मिला और शकुनविचारकने अपना निर्णय दे दिया।

रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥

(मानस २।१९१।६)

निषादका सत्कार स्वीकार करके श्रीभरतलालजी अपने सैन्य तथा समुदायके साथ आगे बढ़े। अब महर्षि भरद्वाजजीका पावन आश्रम दीखने लगा।

श्रीभरतलालने गङ्गापार करके त्रिवेणीस्नान किया। त्रिवेणीस्नान और त्रिवेणीद्वारा 'वरदान' एवं सच्चरित्रता-का प्रमाणपत्र प्राप्त करके आप मुनिके आश्रमपर पहुँचे। (यह प्रसङ्ग भक्तराज तुलसीदासजीके मानसका है।) आदिकवि श्रीवाल्मीकिने भरतलाल और उनकी सेनाको गङ्गापार कराकर सीधे भरद्वाजजीके आश्रमपर ही पहुँचाया है। हाँ, वहाँ भरतजीने अपनी सेनाको आश्रमसे एक कोस पूर्व रोक दिया था। सेना रुककर विश्राम करने लगी थी। भरद्वाजजीके आश्रमपर श्रीभरतलालजीके साथ जानेके लिये महर्षि वसिष्ठ, पुरोहितगण और मन्त्रिमण्डलके सदस्य थे। कुछ दूर जानेपर मन्त्रिमण्डलके सदस्योंको भी रोक दिया गया और आश्रमपर पहुँचनेके पूर्व श्रीभरतलालजीके आगे गुरु श्रीवसिष्ठजी एवं पुरोहितगण ही रह गये थे। वसिष्ठजीको पहचान करके मुनिवर भरद्वाजने सबका यथोचित सत्कार किया। सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब वसिष्ठजीने परिचय-प्रसङ्गमें महाराज दशरथकी मृत्युका संदर्भ नहीं उठाया। उस प्रसङ्गसे भरद्वाजजी पहले ही अवगत हो चुके थे। भरद्वाजजीने सहज भावसे अपनी जिज्ञासा-शान्तिके लिये भरतजीसे जो कुछ पूछा, वह भरतलालजीके लिये एक परीक्षा थी—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः।
एतदाचक्ष्व सर्वं मे नहि मे शुध्यते मनः॥
सुषुवे यममित्रघ्नं कौसल्यानन्दवर्धनम्।
भ्रात्रा सह सभार्यो यश्चिरं प्रव्राजितो वनम्॥
नियुक्तः स्त्रीनिमित्तेन पित्रा योऽसौ महायशाः।
वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश॥
कच्चिन्न तस्यापापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि।
अकण्टकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च॥
एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह।
पर्यश्रुनयनो दुःखाद् वाचा संसज्जमानया॥
(वा० रा० २। ९०। १०—१४)

'वत्स भरत! तुम तो राज्य कर रहे हो, फिर तुम्हारे इधर आनेका क्या प्रयोजन है? मुझे सभी बातें स्पष्ट बताओ। मुझे तुम्हारी इस यात्रापर संदेह हो रहा है। सर्वसाधारणको आनन्द देनेवाले श्रीराम, जिन्हें कौसल्याने जन्म दिया, सीता और लक्ष्मणके साथ वनवास कर रहे हैं। श्रीरामको महाराज दशरथने कैकेयीके कहनेपर वनवास दे दिया। क्या तुम अपने राज्यको निष्कण्टक बनानेके लिये महात्मा राम और लक्ष्मणके प्रति कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं आये हो? महामुनि भरद्वाजके मनमें यह शंका स्वाभाविक उठी जिसका श्रीभरतलालजीने यथोचित समाधान किया। गुरु वसिष्ठजीने भी श्रीभरतलालजीकी उच्च पवित्र भावनाका समर्थन किया। फलस्वरूप महात्मा भरद्वाजकी शंकाका उन्मूलन हो गया। जब श्रीभरतलालजीने श्रीरामके पास पहुँचनेके लिये मुनिसे मार्ग पूछा, तब भरद्वाजजीने उनसे एक रात्रि विश्राम करनेके लिये प्रेमाग्रह किया। अब भरतजी संकोचमें पड़ गये। उनके साथ बहुत-से लोग थे। मुनिका आश्रम छोटा था। पुनश्च भोजन और शयनकी व्यवस्था किस प्रकार सम्भव होगी? इन बातों-को सोचकर भरतजीके मनमें संकोच हो रहा था।

श्रीभरतलालजीकी सेवामें मुनिने ऐसी व्यवस्था सुसम्पन्न करा दी कि जो केवल स्वर्गमें ही सुलभ थी। इसी क्रममें मुनि भरद्वाजजीने भरतजीसे पूछा—'हे पुरुषश्रेष्ठ भरत! तुम अपनी सेना दूर क्यों छोड़ आये हो? सेनाको यहाँ क्यों नहीं लाये? मुनिको प्रसन्न करते हुए हाथ जोड़कर भरतजीने कहा—'भगवन्! आपके क्रुद्ध हो जानेके भयसे ही मैं सेनाको साथमें लेकर यहाँ नहीं आया। मुनिश्रेष्ठ! राजा और राजपुत्र-का यह परम कर्तव्य है कि वह ऋषियोंके आश्रमोंसे दूर रहे। राजा या राजके सैनिकोंको आश्रमके पास पहुँचनेपर आश्रमवासियोंको कष्ट हो सकता है। मेरे साथ सैनिक, हाथी, घोड़े, रथ इत्यादि सभी हैं। उनके

यहाँ आनेसे आश्रमके वृक्षों, जलाशयों, पर्णशालाओंको क्षति पहुँच सकती थी। अतः उन्हें पीछे छोड़कर मैं गुरुजनोंके साथ आपके दर्शनार्थ आया हूँ। तब भरद्वाज मुनिने सेनाको भी आश्रममें बुला लिया।

अपनी तपःसाधनाके बलपर मुनिने देवताओंकी सहायतासे एक दिनके लिये भरतजीके सेवार्थ स्वर्गको पृथ्वीपर उतार दिया। मुनिकी कृपासे भरतजीके साथमें आये सभी जनोंने उस रात्रिको स्वर्गका सुख प्राप्त किया। सैनिक एवं सेवकगण उस सुख-सुविधामें अपने आपको भूल गये। वे यह भी भूल गये कि प्रातः उठकर क्या करना है? (वाल्मीकीय रामायण अयो० सर्ग ९१)

मुनि भरद्वाजके द्वारा अतिथियोंके स्वागतार्थ उपस्थित की गयी उस भोग-सामग्रीका प्रभाव केवल वसिष्ठजी और महात्मा भरतपर ही नहीं पड़ा; गोस्वामी तुलसीदासजीने बड़ी कुशलताके साथ इस प्रसङ्गको उपस्थित किया है।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥

(मानस २। २१४। १, ४)

श्रीभरतलालके सम्मुख विकट समस्या थी। श्रीरामको ढूँढ़नेमें पैदल चलते-चलते उनके पाँवोंमें छाले पड़ गये थे। श्रीभरतलालजीने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा था—

अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥

(मानस २। २११)

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥

भरतने मुनि भरद्वाजके तपोबलसे उपस्थित स्वर्गोपम सुखके साधनों तथा तज्जनित आनन्दका उपभोग नहीं किया, अपितु रातभर जागकर निर्विकार भावसे उन सबको मूक दर्शककी भाँति मात्र देखते रहे। देखते इसलिये रहे कि यह मुनिकी आज्ञाका निर्वहन था। इस वातावरणमें उनकी किंचित् भी रसबुद्धि नहीं थी। तभी तो गोस्वामी तुलसीदासजीको निर्णय देना पड़ा कि—

संपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥

(मानस २। २१५)

यहाँ 'भायप भगति'से भरे श्रीभरतलालजी अपनी सदाचार-परीक्षामें सफल सिद्ध हुए। यह श्रीभरतलालके सद्-आचार तथा सद्विचारोंकी विकट परीक्षा थी। जिस भरतलालको प्रभु-वियोगमें दिनमें भूख नहीं लगती थी और रात्रिमें नींद नहीं आती थी, वे 'स्रक चंदन बनितादिक भोगा' कैसे भोग सकते थे? जब कि उनके पितृतुल्य, परम प्राणप्रिय, बड़े भ्राता श्रीराम अनुज तथा धर्मपत्नीसहित समस्त राजकीय सुखोंका परित्याग करके दुरूह और कष्टकर वनवासी जीवन बिता रहे थे। ऐसी स्थितिमें उनके लिये समस्त प्रकारकी सुख-सुविधाएँ तथा देवोपम भोग अवाञ्छनीय और त्याज्य थे। श्रीरामके पावन चरणोंका दर्शन किये बिना भरतको एक पलके लिये भी विश्राम एवं शान्ति नहीं थी। वहाँ तो यह स्थिति थी कि—'देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाय॥'

श्रीरामके वियोगजनित तापसे दग्ध विनयी और भावुक भरतका कोमल हृदय तबतक शीतलता और शान्ति प्राप्त कर ही कैसे सकता था; जबतक प्रभुका साक्षात्कार होनेपर उनके पादपद्मोंमें प्रणिपात करके उन 'त्रयतापहरण' 'सुभग शीतल' चरणोंका स्पर्श वे अपने तपित हृदय-पटलसे न कर लेते। ऐसा हुए बिना उन्हें एक-एक पल भारी लग रहा था। वस्तुतः श्रीराम-प्रेममें भरत ऐसे व्याकुल थे जिससे उन्हें अपना जीवन ही भारस्वरूप प्रतीत हो रहा था। फिर वहाँ मुनि भरद्वाजका आतिथ्य सुख भोगनेका अवसर ही किसे था?

इस प्रकार अपनी इस शील-परीक्षामें श्रीभरत पूर्णतः उत्तीर्ण हुए। उन्होंने विशुद्ध त्याग और दुष्कर तपस्यायुक्त 'सेवक-धर्म'का जो आदर्श संसारके सामने रखा, वह सदा अनुकरणीय है एवं वह अनन्त कालतक जनमानसको अनुप्राणित करता रहेगा।

अपव्यय एवं दुरुपयोग रोकिये

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

प्रकृतिसे मनुष्यको अनेक ऐसी विशेषताएँ प्राप्त हैं जो अन्य किसी प्राणीको नहीं प्राप्त हैं। उन विशेषताओं-का विकास करते हुए सही उपयोग किया जाय तो नरसे नारायण तथा आत्मासे परमात्मा बना जा सकता है। मोक्षका द्वार केवल मनुष्यके ही लिये खुला है। वह अन्य किसी भी गति और योनिसे—यावत् देवयोनिसे भी नहीं प्राप्त किया जा सकता। यद्यपि मुक्त जीवोंका स्थान जैन-मान्यताके अनुसार 'सर्वार्थ-सिद्ध' नामक देवविमानसे बहुत दूर नहीं है; पर वहाँके देवत्वको भी सीधे मोक्ष नहीं मिलता। मनुष्यलोकमें जन्म लेकर और साधना करके ही वह सीधे मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अतः प्रत्येक मानवको मनुष्य-जन्म प्राप्तकर उसके सदुपयोगकी कला सीखनी चाहिये, जिससे अनन्तकालिक जन्म-मरण, जरा और रोगसे निवृत्ति मिल सके; अन्यथा यदि हमने प्राप्त साधन, समय और शक्तिका दुरुपयोग किया तो फिर वही चौरासीका चक्र तैयार है और यहाँसे जानेके बाद न जाने किस गति या योनिमें जायँगे, कौन कह सकता है? वहाँ किस भूलभुलैयामें पड़ जायँगे, धर्म-साधना करके मोक्ष प्राप्त करनेका शुभ अवसर मिलेगा अथवा दुर्लभ हो जायगा, यह भी कौन बता सकता है? अतः मनुष्य-जीवन प्राप्त होनेका यह जो सुअवसर मिला है, उसे व्यर्थ न जाने दें। समय और शक्तिके रहते हुए ही हम साधन करें। सौभाग्यसे प्राप्त इस सुसमय, शक्ति और साधनोंका अपव्यय और दुरुपयोग न करें। इसमें हमारी निरन्तर जागरूकता और सावधानी होनी चाहिये।

प्रकृतिप्रदत्त विशेषताओंका प्रयत्न तथा पुरुषार्थद्वारा बहुत अधिक एवं अच्छे रूपमें विकास किया जा सकता है। जैसी वाक्-शक्ति और मनोबल मनुष्यको प्राप्त है, वैसी और किसी जीवधारीको प्राप्त नहीं है। बुद्धिके विकास और उपयोगद्वारा मनुष्यने जितने देवोपम आविष्कार किये हैं, उनका क्या मनुष्येतर प्राणियोंसे होना सम्भव है? यद्यपि देवताओंको हमसे बहुत दिव्य शक्तियाँ तथा साधन प्राप्त हैं, पर वे उन्हें देवता होनेके नाते सहज ही मिल गये हैं। इसलिये उनकी चिन्तनशक्ति, बुद्धि-शक्ति-सामर्थ्य उतनी सूक्ष्म और तीक्ष्ण नहीं हो पाती जिससे नये-नये आविष्कार किये जा सकें। उदाहरणार्थ—वाक्-शक्तिका प्रयोग मनुष्यने जिस रूपमें करके भाषा और भावोंको अद्भुत विकास दिया, नये-नये लाखों शब्द गढ़े और वह गढ़ता ही चला जा रहा है, जिससे भावोंको सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। फलस्वरूप अपने भावोंको समझने, आदान-प्रदान करने तथा विषयको समझने और विज्ञान तथा अनुभवके द्वारा प्रत्येक क्षेत्रमें नये-नये अनुसंधान करनेकी योग्यता-प्रदर्शनका सुअवसर मिला। यह मानवकी बुद्धिका ही परिणाम है कि उसने स्व-प्रयत्नोंसे लिपिका विकास किया, जिससे वाणीद्वारा कहे हुए शब्दोंको अधिक समयतक स्थायित्व दिया जा सके। स्मरणशक्ति तो प्रकृतिकी देन है, पर लेखनकलाका विकास तो केवल मनुष्यकी अपनी सूझ-बूझ तथा प्रयत्नोंका सुपरिणाम है। शारीरिक शक्तिकी दृष्टिसे सिंह, हाथी आदि बहुत-से पशु मनुष्यसे अधिक बलवान् हैं, पर मनुष्यने अपने बुद्धिबलसे ऐसे अनेक आविष्कार कर लिये हैं जिनसे उसने प्रकृतिपर बहुत अंशतक अधिकार किया है।

प्रश्न उठता है, जब मानवके पास बुद्धि-बल, विचार-बल तथा ईश्वरप्रदत्त अनेक अद्भुत शक्तियाँ—साधन हैं तो फिर उसे जिस उच्च स्थितिको प्राप्त करना चाहिये था, वह उसे क्यों नहीं प्राप्त कर रहा है? हम इस-

पर गम्भीर विचार और चिन्तन करें तो कारण स्पष्ट हो जायगा कि हम अपनी प्राप्त शक्ति-बुद्धि और साधनोंका अपव्यय एवं दुरुपयोग अधिक कर रहे हैं। अनावश्यक बातोंमें और व्यर्थके कार्योंमें अपनी शक्ति, साधन और समयको लगा रहे हैं। यही उनका अपव्यय है। इस अपव्ययको रोके बिना मानव-जातिकी जो बर्बादी हो रही है वह रुक नहीं सकती। हमारा बहुत-सा समय और बहुत-सी शक्ति व्यर्थके कामोंमें नष्ट हो जाती है। इससे हम जो अच्छे कार्य करना चाहते हैं वे नहीं कर पाते हैं। बाह्य सुखोंकी भूल-भुलैयामें हम निरन्तर इधर-उधर भटकते रहते हैं। हम अपनी शक्ति और समयके सदुपयोगके बजाय उन्हें व्यर्थ गवाँते रहते हैं। बहुत बार हम अनुभव भी करते हैं कि उन प्रवृत्तियोंसे हमें कोई लाभ नहीं है, पर हमारा स्वभाव और अभ्यास बिगड़ चुका है। रात-दिन ऐसे ही अनुपयोगी क्रियाओंके अभ्यस्त हो चुके हैं कि हम बार-बार उसीमें मस्तिष्क लड़ाते रहते हैं और ठोकरें भी खाते हैं। कभी-कभी पश्चात्ताप भी होता है। परंतु असहाय-से बनकर समय और शक्तिके अपव्ययको हम रोक नहीं पाते। व्यर्थकी बातोंमें और जहाँ थोड़े बोलनेसे काम चल सकता है, वहाँ ज्यादा बोलकर हम अपनी वाक्-शक्तिका दुरुपयोग करते हैं। इसी तरह जो धन-सम्पत्ति हमें प्राप्त है, जो हमने अर्जित की है उसको भी ऐसे ही अनुपयोगी कार्योंमें नियोजित करते हैं कि जिससे न अपना लाभ होता है और न दूसरोंका ही। इन सब बर्बादियोंको रोकते रहनेका ध्यान रखें और प्रयत्न करें तो अवश्य ही बची हुई, संचित की हुई शक्ति, समय और साधनोंका सदुपयोग हमारे जीवनको सार्थक बनानेमें सहायक हो सकता है। उस समय हमारा अभ्युदय दूसरोंके लिये भी अधिक उपयोगी तथा कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है।

अधिकतर लोग यह कहकर बहाना करते हैं कि क्या करें, हमारे पास समय नहीं, शक्ति नहीं, सामर्थ्य नहीं, कोई साधन नहीं है; नहीं तो हम यह शुभ कार्य तथा लोकहितका कार्य इस प्रकार कर डालते। विचार कर देखें कि जो शक्ति, सामर्थ्य या साधन उन्हें प्राप्त हैं क्या वे उनका ठीक उपयोग करते हैं? यदि 'नहीं' तो सर्वप्रथम उनके अपव्यय एवं दुरुपयोगको रोकें और उनका सदुपयोग करना आरम्भ कर दें तो हम अपने इस मनुष्य-जीवनको सार्थक बना सकते हैं और अपने प्राप्त अवसरसे अपनी छिपी हुई शक्तिका विकास कर सकते हैं। सतत अभ्यास और युक्तियुक्त साधनाके द्वारा शक्ति विकसित होती है। यह हम सभी जानते हैं कि जो सहज प्राप्त है उसका सदुपयोग नहीं करेंगे तो शक्ति-साधनोंको अधिक विकसित नहीं कर पायेंगे। जितना और जो कुछ हमें प्राप्त है, उसको सही रूपमें उपयोगी और जरूरी कामोंमें लगाना प्रारम्भ कर देंगे, तभी हमारा समय जो अनावश्यक कामोंमें नष्ट हो रहा है, उसे बचाकर आध्यात्मिक विकासमें लगा सकते हैं। आवश्यक कामोंमें भी, जितने कम समयमें हम जो काम कर सकते हैं, उसमें जो अधिक समय लग रहा है, उसपर दृष्टि रखते हुए यदि समय और शक्तिकी बचत करें तो पर्याप्त लाभ हो सकता है।

किसी भी अच्छे कामकी सम्पन्नताके लिये यदि हमारी प्रबल भावना है तो हमारे पास समयकी कमी नहीं है। समय मिल ही जाता है, मिल ही जायगा। कम महत्त्वके कामोंको छोड़कर जो अधिक महत्त्वके काम हैं, जिनसे हमारे जीवन और आत्माका विकास और उत्थान हो सकता है, ऐसे ही काम करनेकी हमारी प्रवृत्ति बननी चाहिये। उसीमें अपनी अधिक-से-अधिक शक्ति और समय लगाना चाहिये। इसी तरह ये शक्ति

और साधन बढ़ाये जा सकते हैं, जुटाये भी जा सकते हैं। पर सबसे पहले आवश्यक है कि प्राप्त साधनों और शक्तिके अपव्यय एवं दुरुपयोगको रोका जाय।

मनुष्य विचारशील बौद्धिक प्राणी है। वह अपने हित-अनहितके साथ दूसरोंकी भलाई-बुराईकी बातें अच्छी तरह सोच-समझ सकता है। इसीलिये उसे चाहिये कि वह अपने प्राप्त साधनों, समय, शक्ति और सामर्थ्यका समुचित सदुपयोग करे। ईश्वरसे प्राप्त वरदानोंका दुरुपयोग करनेका उसे कोई अधिकार नहीं है। परमात्मासे प्राप्त शक्ति और साधनोंके सदुपयोगके लिये ही उसे यह मानवशरीर मिला है, अतः अपनी अन्तरंग और बाह्य शक्तियोंको अधिक-से-अधिक विकसित कर वह उन्हें 'स्व' और 'पर'के कल्याणमें लगाये तभी वह अपने प्राप्त वरद साधनोंके बदले ईश्वरके प्रति सच्चा आभार प्रदर्शन कर सकेगा और इस प्रकारसे वह परमात्माकी प्रसन्नता प्राप्त करके सहज सुखी रह सकेगा।

सुखप्राप्तिका अमोघ उपाय—धर्माचरण

(लेखक—श्रीमदनमोहनजी पाहवा, एम्० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न)

जो कर्म हमारे शास्त्रोंमें विहित हैं, उन्हें धर्म कहा गया है। जो शास्त्रनिषिद्ध हैं, वे कर्म अधर्म या पाप हैं। भगवान्ने गीतामें स्पष्ट कर दिया कि जो शास्त्रोंकी मर्यादाकी रेखाका उल्लङ्घन करता है, वह न तो इस लोकमें सिद्धि और सुखप्राप्ति करता है, न परलोकमें सद्गति और शान्ति प्राप्त कर सकता है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(१६ । २३)

उपनिषदोंने सत्य, अहिंसा, त्याग, तपस्या, परोपकार और उपासनाके मार्गको सदाचारका मार्ग बतलाया और इसका नाम 'श्रेय मार्ग' दिया तथा इसके विपरीत संग्रह, भोग, असत्य, हिंसा और क्रूरताके मार्गको 'प्रेय मार्ग' बताया। साथ ही यह भी बताया कि श्रेय मार्ग या सदाचारका मार्ग मानवको परम शान्ति, आन्तरिक आनन्द देता हुआ उसे नरसे नारायण तथा जीवसे ब्रह्मकोटिमें पहुँचा देता है, जब कि प्रेय मार्गके बाहरी आकर्षण हैं—बाह्य रूपकी झलक और भोगोंकी लिप्सा। यह दुराचारका मार्ग है, काम-क्रोध और अज्ञानसे घिरा हुआ है। इसमें कलह-ईर्ष्या, वैमनस्य और द्वेषकी आग धधक रही है और इस मार्गकी अन्तिम मंजिल है दुःख, ग्लानि, पश्चात्ताप, संताप, भयानक मृत्यु और जन्म-जन्मान्तर-तक अपने परम प्रियतम प्रभुसे वियोग।

गीताने धर्मानुकूल या सदाचारके अन्तर्गत आनेवाले कर्मोंको दैवी सम्पदाका नाम दिया और अभय, सत्त्व-संशुद्धि, योग-स्थिति, दान, दम, यज्ञ, तप, अहिंसा, अक्रोध, त्याग, शान्ति आदि छब्बीस गुणोंको मानवमात्रके लिये अनुकरणीय बताया, जिनके आचरणका फल सुख, शान्ति, समृद्धि, यश और अन्तमें मोक्ष है। दूसरी ओर दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, क्रूरता, अज्ञान, दुराचारके लक्षण हैं जो राक्षसी-सम्पदाके प्रतीक हैं। इनका फल अविरल चिन्ता, ग्लानि, अशान्ति, पश्चात्ताप और अन्तमें प्रभुसे बिछुड़कर बार-बार मूढ़ योनियोंमें पतन तथा अधम-से-अधम गतिकी प्राप्ति है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
(गीता १६ । २०)

महर्षि वाल्मीकिने घोषणा की है कि 'धर्म-पालनसे धनकी प्राप्ति होती है, सुखकी प्राप्ति होती है और समस्त

माङ्गलिक पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। अतः जगत्में धर्म ही सार है।'

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥
(वा० रा० ३।९।३०)

महाभारतने विश्वास दिलाया कि 'धर्मसे आधि-व्याधि नष्ट होती है, धर्मसे ग्रहोंकी पीड़ा दूर होती है। धर्मसे शत्रुओंका नाश होता है। जहाँ धर्म होता है, वहाँ विजय होती है।'

धर्मेण हन्यते व्याधिर्धर्मेण हन्यते ग्रहः।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः॥

भगवान् मनुने मानवमात्रको समझाया कि 'नष्ट हुआ धर्म मनुष्यको मार डालता है और रक्षित होनेपर वही धर्म मनुष्यकी रक्षा करता है। अतः बुद्धिमान् पुरुष धर्मका नाश कभी न करे।'

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत॥
(मनु० ८।२५)

शास्त्रकारोंने आहार, निद्रा, भय, मैथुनको पशुओं और मनुष्योंमें समान बताया, धर्मका पालन ही मनुष्यताका लक्षण बताया और धर्महीन मनुष्यको पशुकी संज्ञा दी—

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥
(हितोपदेश, चाणक्य० १७।१७)

भगवान् शङ्कराचार्यने उस मनुष्यको पशुसे भी बढ़कर बताया है जो धर्मका पालन नहीं करता—

'पशोः पशुः यो न करोति धर्मम्।'
(प्रश्नोत्तरमणिरत्नमाला)

परंतु आज मनुष्य उन ऋषियोंकी वाणीको भूल गया है और सचमुच पशु बनता जा रहा है। आज संसार दुखी है, चारों ओर अशान्ति है, क्योंकि मनुष्य धर्म और सदाचारके मार्गको छोड़कर पशुकी भाँति दुराचारके मार्गपर चल पड़ा है। आज मनुष्य लोभसे प्रेरित होकर गीधकी तरह सबका मांस नोचकर खाना चाहता है। भगवान्ने जो उसको दिया है, उसपर उसे संतोष नहीं। आज मनुष्यपर लोभका भूत सवार है। पिता पुत्रसे और पति पत्नीसे धन छीनना चाहता है। कुत्तेकी तरह भाई भाईको काटने दौड़ता है और उसका हक छीनना चाहता है। क्षुधा-व्याकुल सर्पिणी अपनी कुण्डलीमें फँसाकर अपने बच्चोंको खा जाती है। उसी प्रकार मनुष्य लोभके वशीभूत होकर अपने छल-कपटके चंगुलमें ही भाई-बन्धुओंको भी फँसाकर खा जाना चाहता है। जब मनुष्य लोभके वशीभूत हो जाता है तो उसकी दया, धर्म आदि लुप्त हो जाते हैं। उसके लोभकी आगको अनाथोंके आँसू कैसे बुझा सकते हैं तथा गरीब-दुखियोंकी आह उसे कब शान्त कर पाती है?

दूसरेकी धन-सम्पत्तिको छल-कपट-फरेबसे हथियानेकी प्रवृत्ति आजके युगमें बढ़ती जा रही है। यह पापमूलक प्रवृत्ति आज मनुष्यको सदाचारसे बहुत दूर ले जा रही है और अनेक प्रकारके पापोंको जन्म दे रही है। धनलोलुप मनुष्य क्षुद्रताका शिकार बना हुआ है। वह अपने-परायेमें भेद-भाव उत्पन्न कर रहा है। अपने पुत्र-स्त्रीको सुख देनेके लिये वह अपने दूसरे भाई-बन्धुओंके सुखको छीनना चाहता है। इस इच्छापूर्तिके लिये कुछ बोलता है, अन्याय-मार्गपर चलता है, अपने शुभचिन्तक गुरु-जनोंके वचनोंकी अवज्ञा करता है, इच्छापूर्तिके बाधक व्यक्तियोंके प्रति क्रोध करता है। क्रोध-हिंसाको जन्म देता है। हिंसा और प्रतिशोधकी आगमें जलता हुआ मनुष्य अपनी मानसिक शान्ति खो बैठता है। क्षणिक सुख देकर उसके सारे सुखोंको जला देता है।

भगवान् अन्याय, अनीति, अधर्म और दुराचारको कभी सहन नहीं करते; क्योंकि अधर्म और अनीतिका

उन्मूलन और धर्म तथा सदाचारकी स्थापना प्रभुकी अटल प्रतिज्ञा है। यह मनुष्यकी मिथ्या धारणा है कि भगवान् पापियों और दुराचारियोंका साथ देते हैं। भगवान् पापियोंको कभी क्षमा नहीं करते। पापियोंको तो दण्ड देते ही हैं, उनका साथ देनेवालोंको भी क्षमा नहीं करते, चाहे वे भगवान्‌के कितने प्रिय क्यों न हों। भीष्मपितामह भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे, पितृभक्तिके आदर्श थे, ज्ञानके अवतार थे और बालब्रह्मचारी थे; परंतु जब उन्होंने दुराचारी कौरवोंका साथ दिया तो भगवान् अन्याय सहन न कर सके और अपने प्रिय सखा अर्जुनको उनपर बाण चलानेकी आज्ञा दे दी। इसी तरह द्रोणाचार्य-जैसे गुरु, कर्ण-जैसे दानी और कृपाचार्य-जैसे गुणी व्यक्तियोंको भी भगवान्‌ने क्षम्य नहीं माना; क्योंकि वे दुराचारी कौरवोंका साथ दे रहे थे।

भगवान्‌ने तो सदा ही धर्म और सदाचारके मार्गपर चलनेवाले उन पाण्डवोंका साथ दिया, जिन्होंने भलीभाँति यह समझ लिया था कि यह जीवन तो बिजलीकी चमकके समान क्षणभङ्गुर है। यदि यह धर्म-पालन करते हुए चला भी जाय तो क्या दोष है। इस पृथ्वीपर मानव कहलानेके अधिकारी तो वे ही हैं, जिनका धन, स्त्री, पुत्र, घर, सम्पति और अपना जीवन सब कुछ धर्मरक्षामें काम आते हैं।'

यज्जीवितं चाग्निराशौ संयाति क्षणभङ्गुरम्।
यच्चेद्धर्मकृते याति यातु दोषोऽस्ति को ननु॥
जीवनं च धनं दाराः पुत्राः क्षेत्रं गृहाणि च।
याति येषां धर्मकृते त एव भुवि मानवाः॥

ऐसे पाण्डवोंके यज्ञके जूठे पत्तल स्वयं भगवान्‌ने उठाये और युद्धभूमिमें रथके सारथी बनकर उनके जीवन-की बागडोर अपने हाथोंमें रखी, जिसे देखकर कौरवोंके महामन्त्री संजयने युद्धसे पूर्व ही कह दिया कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(गीता १८। ७८)

अतः मनुष्यको सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि सुखका मूल त्याग है, भोग नहीं। भोग अनित्य है, इससे प्राप्त होनेवाले सुख भी क्षणभङ्गुर हैं। जीव नित्य है और धर्म नित्य है; उस नित्य और सत्यरूप धर्मका पालन करना ही सदाचार है और उसके पालनसे प्राप्त होनेवाला आनन्द नित्य और शाश्वत है। अतः मनुष्यको भयसे, लोभसे, कामसे अथवा जीवनके लिये भी अपने नित्य और शाश्वत धर्मका परित्याग कभी नहीं करना चाहिये, यही हमारे लिये तत्त्ववेत्ता मनीषियोंकी आज्ञा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभा-
द्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥
(महा० उद्योग० ४०। १२)

सद्‌गुण (सदाचरण) आत्मोत्थानमें सहायक

'दान यश देता है, सदाचार सुख देता है और सत्य स्वर्ग देता है।'

—धर्मराज युधिष्ठिर

* * *

'जिस प्रकार खौलते पानीमें अपना प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं दे सकता, उसी प्रकार क्रोधी मनुष्य यह समझ नहीं सकता कि उसकी भलाई किसमें है।'

—बुद्ध

* * *

'घृणा राक्षसोंकी सम्पत्ति है, क्षमा मनुष्यत्वका चिह्न है, परंतु प्रेम देवताओंका स्वभाव है।'

—भर्तृहरि

आजकी पतनोन्मुखी प्रवृत्तियाँ

(लेखक—श्रीमङ्गलीप्रसादजी शर्मा, एम्० ए०, साहित्यरत्न, प्रभाकर)

आज विज्ञानका युग है, जिसका प्रवर्तन पाश्चात्त्य संसारद्वारा हुआ है। मानव-जीवनके भौतिक विकासमें विज्ञानका विशेष योगदान रहा है। परंतु इस योगदानने आध्यात्मिकताका विनाश करके मानवको सर्वथा संत्रस्त एवं धर्मपराङ्मुख बना दिया है।

हमारा देश दीर्घकालतक परतन्त्र रहा, परंतु आसन्न भूतकालमें हमने अपनी आध्यात्मिक शान्तिद्वारा पराधीनता-पिशाचिनीका विनाश कर स्वप्रभुसत्तायुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त की; तथापि हम मानसिक दासतासे अभी मुक्त नहीं हुए हैं। अंग्रेजी शासनमें राजभाषा अंग्रेजीके माध्यमसे हमने उनके आचार-विचार, रहन-सहनकी दीक्षा ली। लार्ड मैकालेकी नीति सफल हुई। हम उनके भक्त हो गये और अंग्रेजोंको ही सर्वगुण-सम्पन्न समझकर अपनेको हीन समझने लगे। सर्वत्र अंग्रेजी प्रभाव छा गया। हमारी 'सादा जीवन तथा उच्च विचार'की सभ्यताके स्थानपर 'खाओ, पिओ और मौज करो' की संयमहीन भोगवादी पाश्चात्त्य सभ्यताने पैर जमा लिये। परिणामतः हम अपने धर्म, सभ्यता-संस्कृतिको छोड़कर स्वेच्छाचारी हो गये और पाश्चात्त्यों-की नकलमें हमारी जीवन-पद्धति ही परिवर्तित हो चली। अहा ! स्वधर्मनाशिनी परधर्मवर्द्धिनी दास्यदायिनी सर्वोन्नत मार्गविरोधिनी मानसिक दासताने हमारा सर्वनाश कर दिया। उसने हमारा क्या नहीं बिगाड़ा ?

प्रारम्भसे ही पाश्चात्त्य विद्वानोंने हमारे ऊपर कीचड़ उछाली। वेदोंकी अतीतकालीन प्राचीनताको अल्पकालीन कालसीमा निर्धारित करनेकी अनधिकार चेष्टा की। वेद-भगवान्‌का प्रादुर्भाव सृष्टिके आदिमें हुआ था, जिसके युगों बीत गये। परंतु प्रो० मैक्डानल आदि वैदिक-कालका प्रारम्भ ईसापूर्व १५०० वर्षसे ही मानते हैं। और अनेकोंने 'वेद गड़ेरियोंके गीत हैं, आर्यलोग भारतके आदिनिवासी नहीं हैं, वे मध्य एशियासे आये थे' इत्यादि अनर्गल बातें लिखकर हमारी धार्मिकतापरक दृढ़ आस्थाओंको भी शिथिल किया। यह ध्रुव सत्य है कि वेदोंका निर्माण सृष्टिके आदिकालमें हुआ और उसने अज्ञानतमसावृत संसारको ज्ञानालोक दिया। हम कहींसे आये नहीं। हमारी आदि-मूल-जन्मभूमि आर्यावर्त भारत ही है। भारत ऋषि, मुनि, संत तथा महापुरुषोंकी जन्मभूमि है और है लीलाधार भगवान्‌की क्रीड़ा-भूमि। हम यहीं थे, यहींके हैं।

किसी देश अथवा जातिका इतिहास उसका अतीतकालीन क्रमिक विकास तथा ह्रासका दर्पण होता है। यदि किसी जातिको पराधीन बनाना है तो उसके धर्म, साहित्य और इतिहासको नष्ट करके उसमें हीन भावनाएँ भर दी जायँ और उसके पूर्वजोंको विस्मृत करा दिया जाय। ब्रिटिश-शासनकालमें ऐसा ही हुआ। उन्होंने इतिहासके सही तथ्योंको तोड़-मरोड़कर उसे विकृत कर दिया और अपनी शासन-कुशलताका राग अलापा। उनकी इस कूटनीति, षड्यन्त्र और धोखेबाजीका डॉ० सुन्दरलालने 'भारतमें अंग्रेजी राज्य' नामक इतिहासमें पूरा भण्डाफोड़ किया है। आदर्श शासक, चरित्र और शौर्यमूर्ति छत्रपति महाराज शिवाजीको 'पहाड़ी चूहा' कहकर उन्हें लाञ्छित किया। अधिक क्या—मिस मेयोने 'मदर इण्डिया' लिखकर हम भारतीयोंको असभ्य सिद्ध करनेका अनधिकार दुष्प्रचार किया, उसका भी भारतीय मनीषियोंने 'फादर इण्डिया' और 'अनहैप्पी इण्डिया' पुस्तकें लिखकर मुँहतोड़ उत्तर दिया। रामायण और महाभारतको भी मनगढ़न्त, कल्पित बताया गया। कहाँतक लिखा जाय, उन्होंने हमारी चरित्र-सम्पदा और

धार्मिक आस्थाओंको अस्त-व्यस्त करके, हमारे मनमें अवाञ्छित कुत्सित भावनाओंका बीज वपन किया, जिसका आज दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार विदेशियोंने भ्रान्तिमूलक अधोगामिनी हीन भावनाओंकी सृष्टि की और हमारे दुर्भेद्य सांस्कृतिक दुर्गको ढाह दिया।

अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे हमारे यहाँ पाश्चात्त्य सभ्यता और संस्कृतिका धुआँधार प्रचार किया गया। किसी जातिविशेषकी विचारधारा उसकी भाषाद्वारा ही व्यक्त होती है। अतः अंग्रेजी रहन-सहन और विचारोंका प्रभाव हमपर पड़ने लगा तथा अन्ततः हम उसके रंगमें रँग गये। स्मरण रहे कि सारा संसार जब अज्ञानान्धकारमें डूबा हुआ था, उस समय आर्य-संस्कृतिका सूर्य मध्याह्नमें चमक रहा था। समयके प्रभावसे संसारकी अन्य संस्कृतियाँ अल्पकालीन होकर काल-कवलित हो गयीं, परंतु आर्य-संस्कृति अनेक धर्मान्ध, क्रूर आक्रमणकारियोंके आक्रमणोंको झेलती हुई भी आज जीवित है। परंतु खेद, अंग्रेजी शिक्षाद्वारा जो हमारी सभ्यता और संस्कृतिपर दुष्प्रभाव पड़ा है, उसका दुष्परिणाम भी वर्णनातीत है।

वस्तुतः शिक्षाके दो प्रयोजन हैं—व्यक्तिको कर्म-क्षेत्रके लिये तैयार करना और उसे ज्ञान प्रदान कर सुसंस्कृत और सभ्य नागरिक बनाना। पर आजकी शिक्षा अपने इस उद्देश्यमें असफल हो रही है। अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली केवल तार्किक विचारों तथा दुर्वासनाओंको उत्तेजना प्रदान करनेवाली है। उसमें उन्नतभावकी तथा सभ्यता-संस्कृतिके प्रति प्रेमवर्धनकी शिक्षा तनिक भी नहीं दी जाती है। हमारी शिक्षामें हमारी संस्कृतिके मूलतत्त्वोंका समावेश आवश्यक है, क्योंकि हमारी संस्कृतिके मूलतत्त्व हमें मनुष्य बनाते हैं और एकताके सूत्रमें बाँधते हैं। भारतमें सांस्कृतिक दृष्टिसे एकता है। हमारी संस्कृतिने हमें सदा प्रेरणा दी। आजके विज्ञान-युगमें यदि हम शिक्षासे संस्कृतिको पृथक् कर देंगे तो मानव एकाकी और यन्त्रवत् हो जायगा। संस्कृतिको शिक्षासे विच्छिन्न करनेपर हमें घातक परिणामोंका सामना करना पड़ेगा।

अंग्रेजी शिक्षाने हमारे मस्तिष्कको विकृत और अंग्रेजी दवाओंने हमारे शरीरके स्वास्थ्यको खराब कर दिया है। धर्मनिरपेक्ष शासनमें धर्म एवं नैतिक शिक्षाका स्थान नहीं है। धार्मिक शिक्षा न होनेसे मनुष्य आचारविहीन होकर मनमाना आचरण करने लगे हैं। **'साक्षरा विपरीताश्चेद् राक्षसा एव ते मताः'** अर्थात् 'पढ़ा-लिखा व्यक्ति जब कुमार्गपर चलने लगता है तो वह राक्षस बन जाता है।' आज सर्वभक्षी राक्षसी प्रवृत्तियोंका ही बोलबाला है। ऋषियों, महर्षियोंके देशमें, बुद्ध, महावीर, गाँधीकी अहिंसा-साधनाकी भूमिमें ऐसी क्रूर राक्षसी प्रवृत्तियोंको स्थान नहीं होना चाहिये।

परिवर्तन जीवन और संस्कृतिका एक अनिवार्य तत्त्व है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जो पुराना है, सब बुरा है और जो नया है, सब अच्छा है। भारतीय संस्कृति समन्वयशील है, किंतु समन्वयमें अपना न खो बैठना चाहिये। भाषा और पोशाकमें भी अपनत्व खोना जातीय व्यक्तित्वको तिलाञ्जलि देना होगा। हमें प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराकी रक्षा प्राणपणसे करनी है।

स्वतन्त्रताप्राप्तिके ३१ वर्षमें, किसी भी दर्शनके आधारपर वर्तमान शिक्षाके सुधारके लिये हम कोई सुनिश्चित एवं सुनियन्त्रित कदम नहीं उठा सके। आजकी शिक्षा धर्मशून्य है। अध्यापकोंने अपने अध्ययन-कालमें कोई धार्मिकता तथा नैतिकताकी शिक्षा प्राप्त नहीं की, अतः वे छात्रोंके मार्गदर्शन करनेमें नितान्त अक्षम रहे। विश्वविद्यालयोंमें चरित्रवान्, योग्य एवं सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करनेवाले सच्चे ज्ञानी, संयमी

कर्तव्यनिष्ठ आचार्य नहीं मिलते। चरित्र-निर्माण करनेवाले अध्यापकोंके स्थानपर रोजी कमानेवाले अध्यापक नियुक्त हो जाते हैं । प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयोंके अध्यापकोंमें भी आचार-निष्ठाकी प्रवृत्ति नहीं पायी जाती । उन्हें कहींसे भी सदाचारकी शिक्षा नहीं मिली । उनकी नियुक्ति उनके प्रमाणपत्र एवं उसमें मिली हुई श्रेणीके आधारपर होती है, उनके सदाचारके आधारपर नहीं होती । श्रेणी तथा वास्तविक योग्यता प्राप्त करनेमें बड़ा अन्तर है । एक तृतीय श्रेणीके संयमी अध्यापककी योग्यता प्रथम श्रेणी पानेवाले अध्यापककी योग्यतासे कहीं अधिक और प्रभावोत्पादक हो सकती है । संयमी, अनुशासित अध्यापक ही छात्रोंको योग्य और सदाचारपरायण बना सकते हैं । सदाचार शिक्षाका सर्वाधिक प्राणवान् तत्त्व है । बिना उसके शिक्षा निष्प्राण है । जीवनमें सच्चरित्रताकी अनिवार्य आवश्यकता है । अतः प्रशासनमें और अध्यापन-कार्यमें चरित्रवान् पुरुषोंको ही नियुक्त करनेमें प्राथमिकता दी जानी चाहिये । किसी भी अधिकारीके लिये योग्यताके अतिरिक्त सच्चरित्रता एवं मानवीय सद्गुण अपेक्षित हैं ।

आजके मानवको कामना और कञ्चन-कामिनीने उन्मत्त बना दिया है । इसकी जड़ भौतिकवादकी भोगलिप्सा है । सच बात तो यह है कि आज कामनाओंकी दासता ही सभ्यता है । कामनाओंमें स्वभावतः भोग-प्रवृत्ति होती है । कामनाएँ अनन्त हैं । ये एकसे अनेक उत्पन्न होती हैं, इसलिये उनके शैवाल-जालमें जो फँस जाता है, वह कभी तटतक नहीं पहुँचता, सदा बहता ही रहता है । यही हाल कञ्चन और कामिनीका है । धन-संग्रह तथा सुन्दर स्त्री-साहचर्यके लिये किसका मन नहीं ललचता ।

अंग्रेजी भाषा और सभ्यतासे हमारा मोह नहीं छूटा है । हम उसके क्रीत-दास बन गये हैं । उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ हमारे जीवनमें प्रतिबिम्बित हो रही हैं । मांस, मदिरा और अंडा-सेवन, सेक्स (स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध), खड़े होकर लघुशङ्का करना, सामिष भोजन, अमर्यादित संयमहीन किशोर-किशोरियोंका साहचर्य, सिगरेट पीना, माता-पिता-गुरु आदि वयोवृद्धोंका असम्मान और तिरस्कार—ये सभी पाश्चात्त्य सभ्यताकी देन हैं । आये दिन हमारे घरोंमें वेद-शास्त्रोंकी पवित्र ध्वनिकी जगह मनोरञ्जनके नामपर ट्रांजिस्टर, रेडियो, टेलिविजन आदिके गंदे गीतोंकी अश्लील ध्वनियाँ गूँजती हुई सुनायी पड़ रही हैं । गो-माताकी पूजा तो दूर रही, उल्टे उनका तिरस्कारकर विलायती कुत्ते पाले जा रहे हैं । इस क्रियामें हमने गौराङ्ग-प्रभुओंको भी मात कर दिया है । माता-पिता अपने बच्चोंको बेबी, पप्पू और बच्चे भी उन्हें माताजी, पिताजी न कहकर पापा, मम्मी कहकर पुकारते हैं । स्वजनोंके लिये भी फादर, मदर, सिस्टर, अंकिल शब्द भी प्रचलित हैं । ऐसा मालूम होता है कि हमने अपने मनरूपी दुर्लौहको विदेशी-शिक्षारूपी पारसमणिके स्पर्शद्वारा कञ्चन बनाना ठान लिया है ! अहो ! भारतीय मनीषाकी यह विडम्बना ! मानसिक दासताका यह कुचक्र !!

पाश्चात्त्य सभ्यता और संस्कृतिका प्रभाव हमारे युवकों और युवतियोंपर सबसे अधिक पड़ा है । पुरानी चालके मनुष्योंको अंध-विश्वासी तथा मूर्ख बताया जाता है । लड़के माता-पिता-गुरु आदि बड़े-बूढ़ोंका आदर करना तथा उनकी आज्ञा मानना अपनी योग्यताका तिरस्कार समझते हैं । कारण स्पष्ट है कि उन्होंने स्कूल-कालेजोंमें वहाँके नौजवान गुरुओंसे (मास्टरोंसे), जो अधिकांशमें अपना मन और मस्तिष्क पाश्चात्त्यसंस्कृतिको अर्पण कर चुके हैं, शिक्षा पायी, जिससे उन्हें धार्मिक शिक्षा नहीं मिली और न अपने धर्म-ग्रन्थोंका कहीं अक्षर भी पढ़नेको मिला । यदि कहीं

कुछ मिला तो पाश्चात्त्य शिक्षाके भक्त विद्वानोंद्वारा विकृत किया हुआ। वस्तुतः वे शुद्ध-शिक्षा-प्राप्तिसे वञ्चित रहे।

आजकल स्कूल और कालेजोंमें लड़के-लड़कियोंकी पढ़ाई साथ-साथ होती है जिसे सह-शिक्षा कहते हैं। सह-शिक्षाने तो रहे-सहे आचार-विचारोंका भी सर्वनाश कर दिया। धर्ममें अश्रद्धा, धर्मशून्य पढ़ाई, युवावस्थाका उभार और संयमकी शिक्षाका अभाव तो था ही, फिर जवान लड़के-लड़कियोंका एक साथ पढ़ना, आग और फूँसके संयोगकी भाँति कामोत्तेजना पैदा करनेमें बहुत ही सहायक हुआ। इसपर भी फैशन और विलासिताने आगमें घी डाला। फलतः सामाजिक मर्यादाका बाँध टूट गया। मनमाना आचरण होने लगा। आचारहीनता, आरामतलबी और निष्क्रियताने उन्हें बेकार कर दिया। अंग्रेजी पढ़कर किसानका लड़का खेती नहीं कर सकता। वह अपने पालतू पशुओंको बाँधने-छोड़नेमें अपमान समझता है, परंतु उसे सौन्दर्य-प्रसाधनों—साबुन, पाउडर, उपनेत्र (चश्मे), जूते, घड़ी, ट्रांजिस्टर, क्रीम, लोशन आदिकी हर घड़ी चाह रहती है। उनका व्ययशील जीवन आलसी और आरामतलब हो गया है। विलासिता और निष्क्रियताका यह रोग अब लड़कियोंमें भी बड़े जोरसे बढ़ रहा है। लड़कियाँ पढ़-लिखकर गृहस्थीके कामसे घृणा करती हैं और रात-दिन शरीरकी साज-सज्जा तथा साधनामें लगी रहती हैं। कहा जाता है कि करोड़ों रुपये सालाना सौन्दर्य-सामग्रीके लिये विदेश जाते हैं।

और तो क्या—पश्चिमी देशोंमें सुन्दरी स्त्रियोंके सौन्दर्यकी हाट लगती है। सौन्दर्य-प्रतियोगितामें जो सुन्दरी सर्वोपरि होती है, उसे विश्व-सुन्दरीकी उपाधिसे विभूषितकर इनाम दिया जाता है। सौन्दर्य-प्रदर्शन एवं विक्रयका यह संक्रामक रोग भारतमें भी आ गया है। बड़े-बड़े घरोंकी लड़कियाँ फिल्मोंमें जानेके लिये लालायित रहती हैं। प्रवेशसे पहले उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों-की परीक्षा की जाती है।

सिनेमाने तो हमारा सर्वनाश कर दिया। उसको देख-देखकर उसके अश्लील गीतोंको गा-गाकर छोटे-छोटे बालकतक दुराचारी बनते चले जा रहे हैं और चोरी, डकैती भी सीख रहे हैं। खुलेरूप विषय-चर्चा होती है। किशोर-किशोरियों और स्त्री-पुरुषोंको मिलनेकी खुली छूट दी जा रही है। यथार्थतः सिनेमा (चित्रपट) से समाजमें दुराचार फैला है। सिनेमा-कम्पनियोंके मालिकोंका मुख्य उद्देश्य पैसा बटोरना होता है। चित्रपटोंको अधिक लोग देखते हैं, जिनसे धन अधिक आता है और अधिक लोग उन्हीं चित्रोंको देखना चाहते हैं, जिनमें अश्लील, श्रृङ्गारिक नृत्य-गीत तथा अर्द्धनग्न सुन्दरी युवती स्त्रियोंके अङ्गोंके प्रदर्शनयुक्त नाट्य होते हैं। इसीलिये उनमें बड़े-बड़े वेतनोंपर नयी-नयी सुन्दर युवतियोंको नियुक्त किया जाता है। इनमेंसे अधिकतर तो स्त्रियोचित लज्जाशीलताको तिलाञ्जलि दे चुकी होती हैं, कुछ युवतियाँ लाज-शर्मको तिलाञ्जलि देकर पुरुषोंके साथ मिलकर, उनसे अङ्गोंका स्पर्शतक होने देकर खुले अङ्गोंसे नाट्य दिखलाकर दर्शकोंको मुग्ध करती हैं।

शोकके साथ कहना पड़ता है कि सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि पतिव्रताओंकी वंशजा आजकी युवतियाँ इनाम और नामके लोभसे अपने शील-संकोच और मर्यादाको छोड़कर कामी पुरुषोंके सामने अपने रूप-लावण्यको बड़े ही निर्लज्जभावसे प्रदर्शनीय बना रही हैं। स्वभावतः स्त्रियाँ श्रृङ्गार-प्रिय होती हैं, उनके लिये श्रृङ्गारका निषेध नहीं है; परंतु वह होना चाहिये एक सीमाके अंदर। स्त्री पतिकी प्रसन्नताके लिये श्रृङ्गार करती है। यह श्रृङ्गार-क्रिया मर्यादित, सदाचारसे अनु-प्राणित होनी चाहिये। जो श्रृङ्गार अधिकांश शरीरको खुला रखकर जन-साधारणको दिखाने और उन्हें आकृष्ट

करनेके लिये होता है, वह तो सौन्दर्यका खुला विज्ञापन है। इस प्रकारका यह प्रदर्शन पवित्र शीलवती भारतीय नारीजातिका घोर अपमान है। ऐसा घृणित कार्य हमारे नारीसमाजके घोर पतनका द्योतक है। क्योंकि किसीका भी आत्मा तो स्वभावतः मुक्त होकर शुद्ध शान्त परमानन्दको ही प्राप्त करना चाहता है, नरकमें कोई भी नहीं जाना चाहता।

स्वार्थपरताके वशीभूत होकर सबको अपनी-अपनी चिन्ता है। सबको अपना पेट भरने और शरीर ढँकनेकी चिन्ता है। 'दूसरा अभावग्रस्त होनेसे दुःखी है'—इस ओर किसीका ध्यान नहीं है। जहाँ स्वार्थ है, लोभ है, वहाँ सुख नहीं रह सकता। वहाँ सदा हाहाकार ही बना रहेगा। जहाँ त्याग है, वहीं सुख, शान्ति है। लूट-खसोट, हिंसा—सभी उपाय काममें लाये जाते हैं, पर पेट नहीं भरता। इनमें समाधान कहाँ?

सदियोंकी परतन्त्रता और विधर्मियोंके अत्यचारोंसे पराभूत होकर हमारे कुछ अग्रणी पुरुषोंने भी आत्म-विश्वास खो दिया है। अपने प्राचीन रहन-सहन, वेश-भूषा, भाषा, धर्म, संस्कृति-सभ्यता, विचार-पद्धति और शासन-प्रणाली आदिमें अच्छाई देखनेकी प्रवृत्ति उन लोगोंमें नहीं रह गयी है। परायी शिक्षा-दीक्षाके कारण भारतीय शरीरमें अभारतीय मन निर्मित हो गया है। इस प्रकार सभी दृष्टियोंसे हम पूर्णतः पाश्चात्त्य संस्कारोंसे आक्रान्त हैं। इस विपरीत दृष्टिकोणके कारण सारा देश दुखी है, चिन्तित है और अशान्त है।

आज देशमें अनाचार, दुराचार, कदाचार, भ्रष्टाचार आदि सदाचारविरोधी दुष्प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं। चोरी, डकैती, लूट-खसोट, अपहरण, वासना-परायणता आदिके बीभत्स दृश्य देखे जाते हैं। इधर फैशन, सिनेमा, दुराचार और विषय-वासनाको बढ़ावा मिल रहा है। शिष्टाचार, धर्माचार तथा सदाचारका तिरोभाव हो गया है। जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद और क्षेत्रवाद आदि अनेक वाद उठ खड़े हुए हैं। हमारी स्थिति पतनोन्मुखी हो रही है। इन सबका मूल कारण सदाचारपूर्ण धर्म-शिक्षाका अभाव है। इस भयावह स्थितिमें हमें सदाचारकी प्रतिष्ठा करके उक्त दुष्प्रवृत्तियों-का मूलोच्छेदन कर देना चाहिये।

पाश्चात्त्य सभ्यताने, जिसका प्रचार-प्रसार अंग्रेजी शासन-कालमें हुआ, हमारी विशुद्ध आचार-पद्धतिको विशृङ्खल करके, उसके स्थानमें अमानवीय संयमहीन आचारकी सृष्टि की है। पाश्चात्त्य जगत्‌की आचार-पद्धति मानवीय नहीं है, उसमें पाशविक वृत्तियोंके अनिष्टकर तत्त्व पाये जाते हैं। हमारी आचार-पद्धति संयमशील सदाचार एवं संस्कृतिसे अनुप्राणित है। इसमें किसीका बहिष्कार नहीं है और मानवीय दृष्टिसे सबके उन्नत एवं सुखी होनेकी सक्रिय भव्य-भावना भरी है। इसी अपनी शुद्ध आचार-पद्धतिका लक्ष्य करके एक बार नेहरूजीने कहा था कि 'हम किसीकी आचार-पद्धतिको अपने ऊपर थोपना नहीं चाहते।'

भारत धर्मप्राण देश है। धर्महीन अथवा सदाचार-हीन होकर वह निष्प्राण हो जायगा। सौभाग्यवश आज हम स्वतन्त्र हैं, जनताकी बनायी हुई अपनी लोकतन्त्रीय सरकार है। सरकारका पावन एवं अनिवार्य कर्तव्य है कि वह जन-जनमें सदाचार एवं धार्मिक शिक्षाद्वारा देश-धर्मके प्रति अनुराग भर दे। शिक्षामें आमूलचूल परिवर्तन हो, उसमें सदाचार और नैतिकता-का विशिष्ट स्थान हो। फैशन और सौन्दर्य-प्रसाधनोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। सह-शिक्षा बंद की जाय। छात्र-छात्राओंकी शिक्षा पृथक्-पृथक् सदाचारपूर्ण भारतीय संस्कृतिके अनुरूप हो। सिनेमाके प्रति अरुचि उत्पन्न की जाय। छात्रोंका जीवन संयमशील और अनुशासनबद्ध हो। इस पावन प्रयासमें ही हमारा अभ्युदय और निःश्रेयस् निहित है।

बापूकी जप-साधना

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

अहिंसाके पालनके लिये अभयको पहली शर्त माननेवाले बापू—मोहनदास करमचन्द गाँधी, जिन्होंने बिना किसी हथियारके अंग्रेजी सरकारको भारत छोड़नेके लिये विवश किया, बचपनमें एक नम्बरके डरपोक थे । वे भूत-प्रेतसे, साँप-बिच्छूसे और चोर-डाकुओंसे बहुत डरते थे । यहाँतक कि अपनी परछाँहीसे भी डरते थे । रातको कहीं भी अकेले जानेमें उन्हें डर लगता । कमरेमें सोते तो बत्ती जलाकर—कहीं भूत आ जाय तो ? कहीं चोर आ जाय तो ? कहीं साँप आ जाय तो ?

उन्होंने अपनी 'आत्मकथा'में भी लिखा है—'मैं बहुत डरपोक था । पासमें सोयी पत्नीसे भी अपने डरकी बात मैं कैसे करता ? मैं समझ चुका था कि वह मुझसे ज्यादा हिम्मतवाली है और इसलिये मैं शरमाता था । साँप आदिसे डरना तो वह जानती ही न थी । अँधेरेमें वह अकेली ही चली जाती थी ।'

गाँधी-परिवारमें एक आया थी—रम्भा । उसपर गाँधीजीकी बड़ी श्रद्धा थी । वह भी नन्हें मोहनसे प्यार करती थी । नन्हें मोहनने उससे एक दिन अपने डरनेकी बात कही । वह बोली—'अरे मोहन ! तू भूत-प्रेतसे डरता है ? साँप-बिच्छूसे डरता है ? तुझे जब डर लगा करे तो 'राम'का नाम ले लिया कर ।' बस, मोहनदासको एक बड़ा कारगर नुसखा मिल गया—डर भगानेका । जब ऐसा मौका आता, वे 'राम'नामका जप शुरू कर देते और उनका डर उडंछू हो जाता ।

वैष्णव-परिवारके संस्कारोंने, माता-पिताकी धर्म-परायणताने और सत्संगतिने तथा रामनामके जपने मिलकर मोहनदासको आस्तिक तो बना दिया, पर उनकी धर्म-जिज्ञासा पनपी विलायतमें, जब वे १८८८में १९ सालकी उम्रमें बैरिस्टरी पढ़ने गये । गीता पढ़ना शुरू किया । भारत लौटनेपर भाई रायचन्द्रने उन्हें धर्मके मूलतत्त्व समझाये । १८९३से १९१५ तकके अफ्रीका-प्रवासमें उनका आत्ममन्थन चला । १९०६में उन्होंने ब्रह्मचर्यका व्रत लिया । जब बीचमें कुछ धूमिल-सा पड़ा तब रामनामका जप पुनः चालू कर दिया ।

नरसी मेहताका 'वैष्णवजन' भजन बापूके गलेका हार बन गया । उसमें वैष्णवकी एक पहचान ही है—'रामनामशुं ताली लागी; हरदम हर घड़ी ।

बस, ताली लग गयी रामनामकी ।

रामनामके एक आढ़तिया थे, बालरामजी । उन्होंने रामनामकी ही आढ़त खोल रखी थी । वे देशमें घूम-घूम कर लाखों लोगोंसे रामनामके जपका नियम लिवाते । इतने नाम जपूँगा, इतनी देरतक, सबसे सही लेते ।

एक दिन बम्बईमें उन्होंने जा पकड़ा गाँधीजीको । बड़े उत्साहसे गाँधीजीने उनकी बहियाँ देखीं । फिर कहा—'जब मैं अफ्रीकामें था तो रामनामकी माला बहुत जपा करता था, परंतु अब तो दिन-रात जो करता हूँ सब राम-नामके लिये ही करता हूँ । इसलिये मैं खास समय और संख्याके लिये हस्ताक्षर क्यों करूँ ।'

ठीक बात । 'जो कछु करूँ सो पूजा ।'—वाला साधक और कुछ कहता भी क्या ? पर बापूका रामनामका जप सतत चालू रहा ।

एक बार 'कल्याण'के सम्पादक नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके हाथमें 'कल्याण'में छपी जप-सम्बन्धी सूचना देखकर बापू बहुत संतुष्ट हुए । बोले—'तुम यह बहुत अच्छा कर रहे हो । इतने जप करनेवालोंमें कुछ

भी यदि हृदयसे जप करनेवाले निकलेंगे तो उनका और देशका बड़ा कल्याण होगा ।' फिर हँसकर बोले—'मैं भी जप करता हूँ, परंतु मैं तो तुम्हें सूचना नहीं भेजूँगा । देखो, यह रही मेरी माला ।' इतना कहकर तकियेके नीचेसे माला निकालकर दिखायी और बोले—'मैं रात-बिरात चुपके-चुपके जपा करता हूँ ।'

नाम-जपके अपने अनुभवोंकी चर्चा करते हुए बापूने ३० । ४ । २५के 'नवजीवन'में लिखा था—'प्राकृत और संस्कृत, दोनों प्रकारके मनुष्य राम-नाम लेकर पवित्र होते हैं । जीभ और हृदयको एकरस करके राम-नाम लेना चाहिये । मैं अपना अनुभव सुनाता हूँ । जब-जब मुझपर विकट संकट आये हैं, मैंने रामनाम लिया है और मैं बच गया हूँ । अनेक संकटोंसे रामनामने मेरी रक्षा की है ।'

७ । ३ । २९के 'नवजीवन'में बापूने पुनः लिखा—'हम भावपूर्ण हृदयसे रामनामका उच्चारण करते रहे तो किसी-न-किसी समय अकस्मात् ही हृदयके छिपे हुए तार एकतार हो जायँगे । यह अनुभव मेरे अकेलेका नहीं है, कई दूसरोंका भी है । लेकिन इसकी एक शर्त है—मुँहसे रामनाम जपते समय वाणीको हृदयका सहयोग मिलना चाहिये; क्योंकि भावनाशून्य शब्द ईश्वरके दरबार-तक नहीं पहुँचते ।'

यरवदा मन्दिर (जेल)से बापूने लिखा था—'श्रद्धाके साथ रामनाम जपनेवाला थक नहीं सकता उसमें जो जीभसे बोला जाता है, वह अन्तमें हृदयमें उतरता है और उससे आत्मशुद्धि होती है । यह अनुभव निर्विवाद है ।

वही तो संत तुलसीका भी अनुभव है—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥

धीरे-धीरे बापूका रामनामका जप 'अजपा-जप' बन बैठा । उठते-बैठते, चलते-फिरते राम-ही-राम ! कभी-कभी माला भी छूट जाती है । कहते हैं—'जब माला मुझे रामनाम जपनेमें मदद करती है तब माला जपता हूँ । जब इतना एकाग्र हो जाता हूँ कि माला विघ्नरूप मालूम होती है, तब उसे छोड़ देता हूँ ।'

बापूकी इस जप-साधनाने सिद्धि प्राप्त की ३० जनवरी १९४८ को; जब गोलीमारनेवालेको प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर उन्होंने कहा—राम ! हे राम !

बालिने कहा था—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं ।
अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

रामनामका जप कैसे करें ? 'राम'का अर्थ क्या है ?' कौन है राम ? ऐसी शंका की एक बार प्रभुदास गाँधीने । बापूकी गोदमें खेले प्रभुदासको उन्होंने बड़ा ही सारगर्भित उत्तर १० । ५ । ३२ को लिखा—

'तू पूछता है कि 'रामका' अर्थ क्या है ? इसका अर्थ मैं समझाऊँ और उसका तू जप करे, तो यह लगभग निरर्थक है; मगर तू जिसे भजना चाहता है, वह राम है—यह समझकर राम-नाम जपेगा तो वह तेरे लिये कामधेनु हो सकता है । ऐसे संकल्पके साथ तू जप, फिर भले ही तोतेकी तरह ही रटता हो । तेरे जपके पीछे संकल्प है, तोतेकी रटके पीछे संकल्प नहीं है । यह बड़ा फर्क है । यहाँतक कि संकल्पके कारण तू तर जा सकता है । तोता संकल्परहित होनेके कारण थककर अपनी रटन छोड़ देगा या मालिकको खुश करनेके लिये करता होगा तो अपना रोजका खाना-पीना लेकर चुप हो जायगा ।

तुलसीदासजीने रामसे रामके नामकी महिमा अधिक बतलायी है; अर्थात् यह बतलाया कि रामका अर्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं । अर्थ तो भक्त अपनी भक्तिके अनुसार बादमें पैदा कर लेगा । यही तो इस तरहके जपकी खूबी है । नहीं तो यह कहना साबित ही नहीं हो सकता कि

जड़-से-जड़ मनुष्यमें भी चेतनता आ सकती है। शर्त एक ही है कि नामका जप किसीको दिखानेके लिये न हो, किसीको धोखा देनेके लिये भी न हो।

मैंने जो बताया उस ढंगसे संकल्प और श्रद्धाके साथ जपना चाहिये। इसमें मुझे कोई शंका नहीं कि इस तरह जपते हुए जो आदमी थकता नहीं उस आदमीके लिये वह कल्पतरु हो जाता है। जिन्हें धीरज होगा, अपने लिये इसे सिद्ध कर सकते हैं। पहले तो किसीका दिनों और किसीका वर्षोंतक इस जपके समय मन भटका करेगा, बेचैन रहेगा और नींद आयेगी और इससे भी ज्यादा दुःखद परिणाम आयेगा, तो भी जो आदमी जपता ही रहेगा, उसे यह जप जरूर फल देगा, यह निःसंदेह बात है।

श्रद्धा जम जाय तो चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-उठते यही रटन लगी रहे और हारनेका नाम न ले, भले ही सारा जन्म इसीमें बीत जाय। यह करता रह और इस बारेमें जरा भी शक न रख कि तुझे दिन-दिन अधिक शान्ति मिलेगी।

आइये, संकल्प, श्रद्धा और सत्यतापूर्वक जप करनेकी प्रेरणा देनेवाले बापूके इस पत्रका नवनीत निकालकर हम चखें और अपना जीवन कृतार्थ करें—

१—राम है वह परमशक्ति, जिसे मनुष्य स्वयं भजना चाहता है—दूसरेके बतानेपर नहीं।

२—रामका नाम संकल्पपूर्वक लेना चाहिये, तोताकी रटनकी तरह नहीं।

३—तुलसीने बताया कि रामका अर्थ तो भक्त अपनी भक्तिके अनुसार पैदा कर लेगा।

४—रामनामके जपसे जड़-से-जड़ मनुष्य भी चैतन्य हो सकता है।

५—राम-नाम-जपकी शर्त है—

(१) नाम दिखानेके लिये न हो, न किसीको धोखा देनेके लिये।

(२) जप विश्वास और श्रद्धाके साथ हो।

६—राम-नामके जपमें धैर्यपूर्वक सतत लगे रहना चाहिये। हृदयका योग बना रहे।

७—अविरत जप करनेवालेके लिये रामनाम कल्पतरु हो जाता है।

८—जप आरम्भ करनेपर—

(१) बहुत दिनोंतक कभी-कभी बरसोंतक मन भटकता रहता है। बेचैन रहता है। पर लगे रहना चाहिये उस नामकी रटमें।

(२) नींद सताने लगती है। पर बादमें वह भी नाम-जपकी छूट दे देती है।

(३) अन्य दुःखद परिणाम आ सकते हैं, (जो शायद विघ्नरूपमें हों)। पर विजय निश्चित है।

९—श्रद्धा जम जाय तो चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते रामनाम जपा जा सकता है।

१०—अनवरत जप करते रहनेसे दिन-दिन अधिकाधिक शान्ति मिलेगी। अतः—

राम राम जपते रहो जब लगि घटमें प्रान।
कबहुँ तो दीनदयालके भनक परेगी कान॥

'ललित ललाम'

राम नाम-रति राम-गति, राम नाम विश्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दहुँ दिसि तुलसीदास॥
हिय निरगुन नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥

(दोहावली ३९ और ७)

भक्त माधवदासजी

माधवदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। गृहस्थ-आश्रममें आपने अच्छी धन-सम्पत्ति कमायी थी। आप बड़े ही विद्वान्, धार्मिक तथा भक्त थे। जब आपकी धर्मपत्नी स्वर्गलोकको सिधारीं, तब आपके हृदयमें संसारसे सहसा वैराग्य हो गया। संसारको निस्सार समझकर आपने घर छोड़ जगन्नाथपुरीका रास्ता पकड़ा। वहाँ पहुँचकर आप समुद्रके किनारे एकान्त स्थानमें पड़ रहे और अपनेको भगवद्ध्यानमें तल्लीन कर दिया। आप ऐसे ध्यानमग्न हुए कि आपको अन्न-जलकी भी सुधि न रही। भगवन्निष्ठ होनेपर यही दशा होती है। इस प्रकार जब बिना अन्न-जल किये आपको कई दिन व्यतीत हो गये, तब अनाथोंके नाथ, दयाधाम प्रभु जगन्नाथजीसे आपका इस प्रकार भूखे रहना न सहा गया। उन्होंने तुरंत सुभद्राजीको आज्ञा दी कि आप स्वयं उत्तम-से-उत्तम भोग सुवर्णथालमें रखकर मेरे भक्त माधवके पास पहुँचा आइये। सुभद्राजी प्रभुकी आज्ञा पाकर सुवर्णथाल सजाकर माधवदासजीके पास पहुँचीं। आपने देखा कि माधव तो ध्यानमें ऐसा मग्न है कि उनके आनेका भी उसे कुछ ध्यान नहीं है। वह तो अपनी आँखें मूँदे प्रभुकी परम मनोहर मूर्तिका ध्यान कर रहा है। अतएव ध्यानमें विक्षेप करना उचित न समझकर वे थाल रखकर चली आयीं। जब माधवदासजीका ध्यान समाप्त हुआ, तब उन्होंने सुवर्ण-थालमें उत्तम भोग देखकर इसे जगन्नाथ प्रभुका अनुग्रह समझा और भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए आनन्दाश्रु बहाने लगे। प्रभुको भोग लगाया, प्रसाद पाकर थालको एक ओर रख दिया, फिर प्रभुके ध्यानमें पुनः मग्न हो गये। ध्यानका आनन्द वे कब छोड़नेवाले थे ?

उधर जब भगवान्के पट खुले, तब पुजारियोंने एक सोनेका थाल न देखकर चिन्ता व्यक्त की। बड़ा शोर-गुल मचाया। पुरीभरमें तलाशी होने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थाल माधवदासजीके पास रखा हुआ मिला। बस, फिर क्या था, माधवदासजीको चोर समझकर उनपर चाबुक पड़ने लगे! माधवदासजीने मुसकराते हुए सब चोटें सह लीं। रात्रिमें पुजारियोंको स्वप्न दिखलायी दिया। भगवान्ने स्वप्नमें कहा—'माधवदास मेरा भक्त है। मैंने उसकी सब चोटें अपने ऊपर ले ली हैं, अब तुम्हारा कल्याण नहीं है। यदि अपना श्रेय चाहते हो तो उनके चरणोंपर गिरकर अपने अपराध क्षमा करवा लो।' भगवदादेश प्राप्तकर बेचारे पंडा-पुजारी दौड़ते हुए माधवदासजीके पास पहुँचे और उनके चरणोंपर जा गिरे। माधवदासजीने तुरंत क्षमा प्रदान कर उन्हें अभय कर दिया। भक्तोंमें दयाभाव तथा क्षमाशीलता स्वाभाविक होती है।

अब माधवदासजीके प्रेमकी दशा ऐसी हो गयी कि आप जब कभी भगवद्दर्शनके लिये मन्दिरमें जाते, तब घंटों प्रभुकी मूर्तिको ही एकटक देखते रहते। भगवान्के पट बंद होनेपर आप तल्लीन अवस्थामें वहीं खड़े-खड़े समाधिस्थ हो जाते।

एक बार माधवदासजीको अतिसारका रोग हो गया। आप दूर समुद्रके किनारे चले गये। उस समय आप इतने दुर्बल हो गये कि उठ-बैठ नहीं सकते थे। ऐसी दशामें एक दिन जगन्नाथजी स्वयं आकर सेवक बन करके आपकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। जब माधवदासजीको कुछ-कुछ होश आया तो उनके दिव्य स्पर्शका अनुभवकर उन्हें प्रभुको पहचानते देर न लगी। उन्होंने विचार किया कि हो-न-हो ये जगद्बन्धु जगन्नाथजी ही हैं। उनके सिवा यहाँ निर्जन सुदूर एकान्त समुद्र-तटपर मेरी देखभाल करने और कौन आ सकता है। यह समझकर उन्होंने झट प्रभुके चरण

पकड़ लिये और विनीतभावसे कहने लगे—'नाथ ! मुझ-जैसे अधमके लिये आपने इतना कष्ट क्यों उठाया ? प्रभो ! आप तो सर्वशक्तिमान् हैं । अपनी शक्तिसे ही मेरे दुःख क्यों न हर लिये, वृथा इतना परिश्रम क्यों किया ?' भगवान् कहने लगे—'माधव ! मुझसे अपने भक्तोंका कष्ट नहीं सहा जाता, उनकी सेवाके योग्य मैं अपने सिवा किसीको नहीं समझता । इसी कारण मैं तुम्हारी सेवा करने ही चला आया । तुम जानते ही हो कि प्रारब्ध तो भोगनेसे ही नष्ट होता है; ऐसा ही विधिका विधान है, इसे मैं क्यों तोड़ूँ ? इसलिये सेवा करके प्रारब्धका भोग भक्तोंसे भुगतवाता हूँ और—

'योऽसौ विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते'

इसकी सत्यता संसारकी शिक्षाके लिये दिखलाता हूँ।' यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । उनके जाते ही माधवदासजीका सब शारीरिक कष्ट भी दूर हो गया ।

इन घटनाओंसे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । अब तो माधवदासजीकी महिमा चारों ओर फैलने लगी । लोग इनको बहुत घेरने लगे । भक्तोंके लिये सकामी संसारी लोगोंसे घिर जाना एक बड़ी विपत्ति है । आपने सोचा कि अब मुझे पागल बन जाना चाहिये । बस, आप पागलका-सा अभिनय करते हुए भगवन्नाम-ध्वनिके साथ इधर-उधर घूमने लगे । एक दिन आप एक स्त्रीके द्वारपर गये और भिक्षा माँगी । वह स्त्री उस समय चौका दे रही थी, उसने क्रोधसे चौकेका पोतना माधवजीके मुँहपर फेंककर मारा । आप बड़े प्रसन्न होकर उस पोतनेको अपने निवासस्थानपर ले आये । उसे धोकर तथा सुखाकर उसकी बत्ती बनाकर भगवान्के मन्दिरमें जा करके जलायी, जिसका यह फल हुआ कि उस पोतनेकी बत्तीसे ज्यों-ज्यों मन्दिरमें प्रकाश फैलने लगा, त्यों-त्यों उस स्त्रीके हृदय-मन्दिरमें भी ज्ञानका प्रकाश होना प्रारम्भ होने लगा । अन्तमें वह स्त्री परम भक्तिमती हो गयी और रात-दिन भगवान्के ध्यानमें मग्न रहने लगी । एक बार एक बहुत बड़े शास्त्रज्ञ पण्डित शास्त्रार्थद्वारा दिग्विजय करते हुए माधवजीके पाण्डित्यकी चर्चा सुन करके शास्त्रार्थ करने जगन्नाथपुरी पहुँचे और माधवदासजीसे शास्त्रार्थ करनेका हठ करने लगे । भक्तोंको शास्त्रार्थ निरर्थक प्रतीत होता है । माधवदासजीने बहुत मना किया, पर शास्त्रार्थी भला कैसे मानते ? अन्तमें माधवदासजीने एक पत्रपर यह लिखकर हस्ताक्षर कर दिया कि—'माधव हारा, पण्डित महोदय जीते' । पण्डितजी इस विजयपर फूले न समाये, वे तुरंत काशी चल दिये । वहाँ पण्डितोंकी सभा करके वे अपनी विजयका वर्णन करने लगे और प्रमाणपत्र लोगोंको दिखाने लगे । पण्डितोंने देखा तो उसपर यह लिखा पाया कि—'पण्डितजी हारे, माधव जीता ।' अब तो पण्डितजी क्रोधके मारे आगबबूला हो गये । उल्टे पैर जगन्नाथपुरी पहुँचे । वहाँ माधवदासजीको जीभर खूब गालियाँ सुनायीं तथा शर्त रखी कि इस बार शास्त्रार्थमें जो हारेगा, वह काला मुँह करके गधेपर आरूढ़ होकर नगरभरमें घूमेगा । माधवदासजीने बहुत समझाया, पर वे क्यों मानने लगे ? अवसर देखकर भगवान् जगन्नाथस्वामी माधवदासजीका रूप बना पण्डितजीसे शास्त्रार्थ करने पहुँच गये और भरी सभामें उन्हें शास्त्रार्थमें परास्त कर दिया । अन्तमें उनकी शर्तके अनुसार उनका मुँह काला करके गदहेपर चढ़ाकर नगरभ्रमणके लिये भेज दिया गया । यह कौतूहलपूर्ण दृश्य देखकर सैकड़ों बालक धूल उड़ाते पण्डितजीके पीछे-पीछे चलने लगे । भक्त माधवदासजीने जब यह सब सुना तो वे तुरंत दौड़े गये और मन्दिरमें जाकर भगवान्के चरण पकड़कर पण्डितजीके अपराधोंकी उनसे क्षमा माँगी । फिर माधवदासजीने पण्डितजीके पास पहुँचकर उन्हें गदहेसे उतारकर बार-बार उनसे क्षमा माँगकर

उनका रोष दूर किया। धन्य है, भक्तोंकी सहिष्णुता और दयालुता !

एक बार माधवदासजी व्रजयात्राके लिये जा रहे थे। मार्गमें एक श्रद्धालु बहन अपने यहाँ आपको भोजन करानेके लिये ले गयी। उस बहनने बड़ी श्रद्धा-प्रेमसे आपको भोजन कराया। भोजनकालमें उस महिलाने प्रत्यक्ष देखा कि—आपके साथ भगवान् श्यामसुन्दर भी बगलमें बैठकर भोजन कर रहे हैं। वह भक्तहृदय भावुक स्त्री भगवान्का अलौकिक सौन्दर्ययुक्त सुकुमार स्वरूप देखकर प्रेमावेशसे रोने लगी और माधवजीसे पूछने लगी कि 'महानुभाव ! किस कठोर हृदय माताने ऐसे सुन्दर सुकोमल बालकको आपके साथ कर दिया है ?' माधवदासजीने गर्दन फिराकर देखा तो सचमुच ही श्यामसुन्दर पार्श्वमें बैठे भोजन कर रहे हैं। अब तो आप प्रेमसे बेसुध हो गये। चेतना आनेपर उस बहनकी प्रशंसा करते हुए उनकी परिक्रमा करने लगे। अन्तमें उस स्त्रीके भक्तिभाव और सौभाग्यकी सराहना करते हुए वहाँसे अपनी आगेकी यात्राके लिये विदा हुए।

भगवत्प्राप्त भावुक भक्तों और संतोंके जीवनमें ऐसी अलौकिक घटनाएँ होती रहती हैं। ऐसे भगवद्भक्त-संत सदैव अनुकरणीय, वन्दनीय एवं स्मरणीय होते हैं।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(जपकी अवधि—कार्तिक पूर्णिमा विक्रम संवत् २०३४ से चैत्र पूर्णिमा विक्रम संवत् २०३५ तक)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(इस षोडशनाम महामन्त्रका ४३ करोड़से अधिक जप अर्थात् ६ अरबसे अधिक नाम-जप हुआ।)

हर्षकी बात है कि 'कल्याण'में प्रकाशित प्रार्थनाके अनुसार प्रतिवर्षकी भाँति उपर्युक्त अवधिमें 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी, नामप्रेमी पाठक-पाठिकाओंने बहुत ही उत्साहके साथ स्वयं नाम-जप करके तथा दूसरोंसे करवाकर विश्व-कल्याणका महान् कार्य तथा पुण्यार्जन किया है। उनके उत्साहका पता जपकी उपर्युक्त बृहत् संख्यासे स्वयं ही प्रकट है। यद्यपि प्रार्थना केवल २० करोड़ जपके लिये की गयी थी, किंतु भगवत्प्रेरणासे जप उससे कहीं अधिक हुआ है। इसके लिये हम सभी जपकर्ताओंके हृदयसे आभारी हैं। विवरण निम्नवत् है।

(क) मन्त्र-संख्या—४३,४९,७२,७७२ (तैंतालीस करोड़, उनचास लाख, बहत्तर हजार, सात सौ बहत्तर)

(ख) नाम-संख्या—६,९५,९५,६४,३५२ (छः अरब, पंचानवे करोड़, पंचानवे लाख, चौंसठ हजार, तीन सौ बावन)

(ग) षोडश मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बहुत-से लोगोंने जप करनेकी सूचना दी है, संख्या नहीं लिखी।

(च) भारतका शायद ही कोई प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। पड़ोसी देशों (नेपाल आदि) तथा विदेशों (इंग्लैंड आदि)से भी जप-सम्बन्धी कुछ सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

(छ) कुल १२१६ स्थानोंके नाम हमारे यहाँ अङ्कित हुए हैं। स्थानोंके नाम अङ्कित करनेमें यद्यपि यथाशास्त्र सावधानी बरती गयी है फिर भी कुछ भूलोंका रह जाना सम्भव है। कुछ सूचना-पत्र ऐसे भी आये हैं, जिनमें स्थानोंके नाम ठीकसे पढ़नेमें नहीं आते। कुछ पत्र डाककी गड़बड़ीसे तथा कुछ हमारे कार्यालयकी असावधानीवश बिना चढ़े हुए भी रह गये हो सकते हैं। इस स्थितिमें सम्भव है कुछ स्थानोंके नाम छूट गये हों। इसके लिये हम सभीसे विनम्र क्षमा-याचना करते हैं।

स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं—

अंकिरेडिपल्ली, अंकोला, अंगुरी, अंचलवाड़ी, अंडी, अंदकूर, अंधियारखीर, अंधोप, अकरातालाब, अक्कलकोट, अनूर, अगरैलडीह, अगुरी, अगलापुरम, अजनी, अजबपुरा, अजमेर, अर्जुननगर, अर्जुनपुर, अटेर, अणुशक्तिनगर,

अनंगपुर, अनिलवाड, अनुग्रहनगर, अपहर, अवाड़ा, अमकुई, अमगवां, अमरा, अमरावती, अमसारी, अमहा-पंडिताना, अमारुत, अमूवाई, अमृतपुर, अमेरा, अम्बागढ़, अम्बाला, अम्बिकापुर, अयोध्या, अरई, अरनिया-चौहान, अरनियाँ गौड़, अररिया, अलवर, अलीगढ़, अल्मोड़ा, अल्लागंज, असजना, असरीखेड़ा, अस्ता, अशोकपुर, अहमदाबाद, अहारन, अहिल्यापुर, आऊवा, आगरा, आजमनगर, आजमगढ़, आचार्यविहार, आदित्यपुर, आबादगंज, आमीपुर, आरा, आरोना, आर्वी, आलापुर, आलीराजपुर, आसनसोल, आसपुर, आसिफाबाद, इन्द्राल, इन्दुपुर भीरा, इन्दौर, इटकी, इटकी अंतरगांव, इटखरी, इटरसी, इटवा, इमझिरी, इलाहाबाद, इसरी बाजार, इस्सानगर, ईन्दोड़ा, ईश्वरपुरसाई, उखलीबाजार, उज्जैन, उडीपी, उत्तरपाड़ा, उदयपुर, उदौरा, उधना, उब्दरई, उमरानाला, उमेदाबाद, उरई, उल्हासनगर, उसरी, ऊगरपुर, ऊना, एकडेंगवा, ऐनपुर, ऐली, ओझर, ओबेदुल्लागंज, ओरगन, ओरछा, ओसवलिया, औरंगाबाद, औरही, ककढ़ियां, कचुपटभ, कछिगवा, कटक, कटनी, कटरा सआदतगंज, कठवैया, कठोरा, कनकल, कनवार, कनासिया, कन्नौद, कन्हौर, कन्हौली, कवाटबंध, कवेला, कमतौल, करतापल्ली, करनपुर, करवन्दिया, करवाड़, करसर, करही, करहोला, कराईनारा, कराहल, करीग्राम, कलकत्ता, कलरनगट्टा, कल्याण, कल्याणपुर, कल्लखाली, कवई, कवटल, कवरई, कसवां, कसौली, कांजिया, कांटावाजी, कांसारपाल, कामारेड्डी, कागजी देवरा, काजिया-बाद, काठड़ी, कादरगंज पढ़ेरा, कानपुर, कायथा, कारंजा, कालीमाट्टी, कालेनरपंतनगर, काशीपुर, कासगंज, कासापुरम, किंजोली, किछा, किशनगढ़, किसनपुरी, कुक्षी, कुचामन सिटी, कुड़ी, कुनौनी, कुमारधुवी, कुम्हली, कुम्हारी, कुरणखेड़ा, कुरमापाली, कुरला, कुरुंदा, कुसमरा, कुसमौरा, कूंडिया, कूचविहार, क्यानिंग टाउन, क्योटरा, केल्नपुरवा, केलापुर, केसरा, केकड़ी, केथूनीपोल, केवई, केशवाड़ी, केशीपुर, कैम्पबेलवे, कैलारस, कोइयें, कोकरीकलां, कोकेलकचक्र, कोचीन, कोट, कोटद्वारा, कोटफतूही, कोटरा, कोटरी, कोटा, कोठारा, कोठियां, कोठियातुली, कोडरमा, कोतरी, कोयम्बटूर, कोरियांव, कोल्लापुर, कोहनी, कौशल्पुर मोहरिंगो, खंडेला छोटा-पानाका गढ़, खखरा, खुज्झा, खजुरीरुण्डा, खुडई, खड़ावदा, खरदहाई, खरसड़ा, खरोश, खरीसा, खलियारी, खलीलाबाद, खांगटा, खापरखेड़ा, खालवा, खिमसेपुर, खिरियाखेथू, खीरी, खुरई, खुरहान मिलिक, खूपुरा, खेरेगड़ा, खेजराहाट, खैरा, खैराचातर, खैराबाद, खोड़, खोरिया, गंगापुर, गंगावति, गंगोर, गंज, गजाधरगंज, गढ़पुरा, गढ़र, गढ़ा, गढ़ी-मलहरा, गदहिया, गदाइपुर, गनियारी, गनेशपुर, गया, गरीफा, गरुड़, गवां, गवांखेड़ा, गहीबुड़ा, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाड़ाटोला, गामीटोला, गाहलियां, गिन्दोरहाट, गिन्दौर, गिरिजास्थान, गुजरा, गुजराटियान, गुजरी, गुडरु, गुढ़ा, गुणगांव, गुरमा, गुराड़ियाजौगा, गुड़ाड़िया, गुलजारबाग, गुलरिहा, गुलालपुर, ग्वालियर, गोण्डा, गोगांव, गोदिया, गोनौन, गोरखपुर, गोरुडुवा, गोलोकधाम, गोविन्दगढ़, गोविन्दपितौझिया, गोहीधमेसी, गौरदोस्तीया, गौरा, गौरीकलां, गौहारी, घड़सीसर, घनोरा, घाटकोपर घिटौली, घिराया, घेवड़ा, घोपतपुर, घोघरामा, चकरोता, चकौंध, चण्डीगढ़, चन्दनपट्टी, चन्दनभाटी, चन्दरपुर, चन्द्रहटी, चनाडोंगरी, चन्द्रा, चन्द्रायएणधरहरा, चन्डौत, चन्दौरा, चन्दौसी, चमखरी, चमराडोल, चमेली-चौम, चरकोनवां, चरखारी, चरखोदादरी, चरौंदी, चांपा, चांचोड़ी, चान्दडीह, चाकुलिया, चामगढ़, चिकम्बरपुर, चिड़ासन, चित्तौड़गढ़, चिमुर, चियौकी, चिरमीर, चिन्नामालरेड्डी, चुवाड़, चूरू, चेन्नर, चेम्बूर, चौधराना, चौबयाना, छकना, छपरावहास, छपीरा, छरी, छर्रा, छिकाऊ, छिन्दवाड़ा, छेवरहा, जंगलोट, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगनेर, जगाधरी, जगीपुर, जजौली, जनूथा, जनोटीपालड़ी, जभुवां, जमशेदपुर, जमानियां, जमालपुर, जमुआंव, जम्मू, जयपुर, जरहन, जरीनपुर, जलालपुर, जलोदिया, जवां, जसमतपुर, जसो, जांजगीर, जाम, जालना, जालोर, जावद, जावरमाइन्स, जासावचौरा, जाहिराबाद, जिगना, जिवराखनटोला, जीतापुर, जीन्द, जी० वी०, जेठवारा, जैतपुरा, जैमोहरा, ज्योलीकोट, जोगिया, जोंगीडीपा, जोधपुर, जोवनेर, जोरखर-डीह, जौनपुर, झपट्टा, झरियापाली, झांसी, झालावाड़, झाल्दू, झीठपुरा, झुंझुनू, झुमरीतिलैया, टडवाई, टपूकड़ा, टाइतसार, टाडीपल्लीगुडेम्, टामटिया, टिकरी, टिटिलगढ़, टिमरनी, टियाली, टेकरेला, टी० टी० नगर, टीलाखेड़ी, टेनसर, टेवेझरी, टेमागांव, ठुकरियासर,

डगीरा, डरमारम, डाकपत्थर, डाढाकलां, डारडाहिन्दी, डालटेनगंज, डालमियानगर, डिण्डोरी, डेमी-कलांन-, डोंगरगढ़, डोढ़वी, ढढ़नी, तलेगांव, तांतेपुर, तांदुलवाड़ी, तालमडगी, तालिकपुर, तासगांव, ताहाचल, तिदवारी, तियारा, तिरिणिआं, तिलकपुर, तिलंजरी, तीजपुर, तुलसीपुर, तुसरा, तुमकुर, तूभेन, तेजपुर, तेतरकेला, तेरवा, तोडेपल्लिगुड्डम, तौरा, थानेसर, दतवासा, दतिया, दवयाना-बंगला, दमोह, दरेकसा, दल्ली, दरवांसी, दाऊद-नगर, दादर, दान्दोपार, दामला, दार्जिलिंग, दिग्विजयग्राम, दिदवारा, दिघरी, दिमनी, दिल्ली, दीनानगर, दीराचांद-पुर, दुवहा, दुलारपुर, दुल्हारा, दूबेपुर, देईपुर, देवगढ़, देवगांव, देवजरा, देवढ़ी, देववहार, देवरिया, देवरी, देवल, देवलालीकैम्प, देवली, देवास, देहरादून, धगदी, धनगांव, धनवाद, धनीता, धनीरा, धमाना, धवही, धरमंगदपुर, धरनी, धरीला, धामपुर, धार, धौलेता, नंगलटाऊनशिप, नंदवई, नंदुरबार, नन्दगवां, नगरपारा, नगलाईमली, नगलाबैरु, नजरापुर, ननासा, नयानगर, नयापारखुर्द, नयी दिल्ली, नरगोड़ा, नरमण्ड, नरयावली, नरवाणा, नरसिंहपुर, नरहरपुर, नरहागादे, नवटोलिया, नवलगढ़, नवलपुर, नवलशाही, नवीननगर, नसीराबाद, नहवाई, नांगल, नांदुराबु, नाईचाकुर, नाकी, नागपुर, नाचनी, नाटली, नानीबोरु, नापासर, नारहट, नारायणपुर, नारी, नारेहड़ा, निगुलगारी, निगोही, निधासन, निपनिया, निमापड़ा, निम्बाहेड़ा, निरपुड़ा, निरसाचट्टी, निवाई, निहरुआ, निडिल, नीनल, नीमकाथाना, नीमी, नुआपतन, नेन्नल, नेयोरी, नैनपुर, नैनीताल, नोरवां, नोखामढ़ी, नौगांव, नौबतपुर, पंजकवासा, पंचलास, पंजीयतपुरा, पंडरिया, पंथाय, पकरहट, पकरा, पकरी, पचंगवाजार, पचौरी, पटना, पटियाला, पटेवा, पटोरी, पढ़कुआ, पताही, पन्दोया, परतेवा, परभड़ी, परवाहा, परसपुर, परसा, परसिया ठकुराई, पलवांचा, पलानाखुर्द, पश्चिम-बगही, पहदिया बुजुर्गसानी, पारोलें, पालमपुर, पालमो, पालर, पाली, पाहल, पांचाडुमर, पांडू, पाजूखुर्द, पानसर, पानीपत, पिंडरसोत, पिडुरिया, पिथौरागढ़, पिपरिया, पिपरोली, पिपलानी, पियां, पिलखुआ, पिलीबंगामंडी, पीनना, पीपरीगहरवार, पीपलयरावजी, पीपल्याजोधा, पीरो, पुनेरी, पुरहिया, पुरी, पुलगाँव, पुसद, पूत्तूर, पून्डरी, पूनाहाना, पूर्णिया, पूर्णे, पूरनपुर, पूरामुकुन्द, पूरेइच्छासिंह, पूल्यिूर, पेटलावद, पेठवडगाँव, पेराजोर, पैंची, पोंडी, पोखरनी उवारी, पोखरैडा, पोरवन्दर, पौना, फतुहा, फलोड, फरिदकोट, फरीदाबाद, फागी, फिरोजपुरकलाँ, फिरोजपुर-सिरी, फिरोजाबाद, फेरुसा, फैजपुर, फैजाबाद, बकनिया, बकवाँबुजुर्ग, बखरा, बगासपुर, बजदिपुर, बजौर, बझान, बाटली, बटाला, बटेसरा, बडकुई, बदौली, बड़कागाँव, बड़गाँव, बड़हरवालखनसेन, बड़दाउद, बड़वानी, बड़वारा, बड़वाह, बड़ामलहरा, बड़ोपल, बड़ोसा, बड़ौदा, बदनावर, बदनौर, बदौसा, बधमरिया, बधवाँ, बनकसिया, बनमक्खी, बनवार, बनवारी-बसन्त, बनाली, बन्धपाली, बनौली, बभनगामा, बमरौली, बम्बई, ब्रह्मावली, बरगुजर, बरडीह, बरचन्दी, बरमकेला, बरसाना, बरहा, बराडा, बराना, बरेली, बरौधा, बलरामपुर, बलागीरि, बलुआ-बाजार, बल्लभग्राम, बलौदा, बसडीला, बसनैपुर, बसौली, बहराइच, बाँदनवाड़ा, बाँसउदयसिंह, बाँसवाड़ा, बागराजपुर, बाजपुर, बादली, बानूछपरा, बाबापुर, बामौरकलाँ, बाराहाट, बारी, बारीडीह, बारु, बालोतरा, बाशी, बाहुण्डांगी बिजपडी, बिजनौर, बिठूर, बिनका, बिरमित्रापुर, बिरहर, बिरांधी, बिलाइमुण्डा, बिलदा, बिलहा, बिसाना, बिसौली, बिहार-शरीफ, बीकानेर, बीजापुर, बीमा, बीरवाँ, बुडतरा, बुदवन, बुन्देली, बुरला, बुलन्दशहर, बूँदी, बेगूसराय, बेड़ी, बेतिया, बेनोडा, बेरमी, बेलकुंड, बेलगाई, बेलमण्डई, बेलवणकि, बेलवा, बेलसरा, बेलागुसीसी, बेलापुर, बेहटा, बेहरामपुर, बैकुण्ठपुर, बैजानाथपुर, बैजानी, बोकठा, बोकारो स्टील सीटी, बोटाद, बोदवड, बोरखेड़ी, बोरियाजागीर, बोरिवली, बोलारम, भंडारतल, भगवन्तनगर, भगवानपुर, भटगाँमा, भटली, भटसीमर, भटोतरचकला, भदेख, भदैनी, भदैया, भद्रपुरा, भद्रपुर (नेपाल), भद्रेश्वर, भरसवाँ, भराड़ी, भरावदा, भवानीमण्डी, भाईरुपा, भाऊगढ़, भागलपुर, भादवा, भादसों, भानऊ, भानुप्रताप, भाग, भारी, भालकी, भावनगर, भिलावट, भिकनूर, भीमनगर, भीलगाँव, भीलवाड़ा, भुमकहर, भुड़िया, भुवनेश्वर, भुसावल, भेटगाँव, भेड़वन, भेरुच, भेरोवड़ा, भैरवाकोटा, भैसदेही, भैंसा, भैसोदा, भोजपुर कोल्हुइया, भोजुडीह, भोपाल, भालेपुर, भौरासा, मंगथपुर, मंगवार, मंडलघाट, मंडी, मऊगंज, मऊ-छीवाँ, मऊनाथभंजन, मकरी, मकरोनिया, मछलीशहर, मछौवा, मटीमा,

मढ़ाका, मड़वास, मड़ेवा, मणिपुर, मदनपुर, मद्रास, मधेपुर, मनफरा, मनमा, मनसापुर, मनेन्द्रगढ़, मसुराबाद, मरुईकिसुनदासपुर, मल्लानिंगलाढ़, मलारनाचौड़, मलिनिया-दिरा, मसकनवाँ, मसदी, मसहा, महदीपुर, महनार, महाराजगंज, महिशारी, महुअरी, मनिगाँव, महोवा, महोली, मांडल, माजरा, माजलगाँव, माधोपुर, मानिकपुर, मालथोन, मालव, मालहनवाड़ा, मालीपुर, मालेश्वरम, मालौनी, माहीम, मिझौली, मिटावल, मिरजानहाट, मिर्जागंज, मिरिक, मिसरौली, मुंगेर, मुंडीवाड़ा, मुंडला, मुंडवा, मुकुन्दगढ़, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुडाजे, मुड़ियाकैल, मुनवो, मुनिगुड़ा मुरलीचन्दवाँ, मुरादाबाद, मुलताई मुल्लापुर, मुलूंड, मुस्तफाबाद, मेवौल, मेडशी, मेड़तासीटी, मेदिनीपुर, मेरठ, मेला, मेवला, मेहसी, मेहाँ, मैठाणा, मैहरी, मोखतियारपुर, मोचीपुरा, मोछ, मोतीटाटी, मोतीहारी, मोरवी, मोरखण्ड, मोहरेंगा (धमधा), मोहिउद्दीनपुर, मौजपुर, मौदा, यमुनानगर, यवतमाल, येवला, योगियाँ, रक्सौल, रछोहा, रजऊ, रतनगढ़, रतनपुर, रतनपुरा, रनिया, रन्दरपुरभीटा, रमवापुर, रह्मवली-उवारी, राँगामाटी, राँची, राकी, राघोडीहरा, राजकोट, राजगढ़, राजगुरुनगर, राजापाकर, राजारेहुवा, रानापुर, राज्यावास, रानीखेत, रानीबाग, रामकोला, रामगढ़, रामचन्द्रपुर, रामतीर्थ, रामनगरखजुरी, रामपुर, रामपुरा, रामपुरा-फूल, रामामंडी, रामलालपुर, रायगढ़, रायचूर, रायबरेली, रायपुर, रायपुररानी, रायपुरा, रायसिंहनगर, राऊकेला, रारी, रावतपार-अमेठिया, रावत-माल, राहतगढ़, राहें, रियांवडी, रींगस, रींवा, ऋषिकेश, रूपनगर, रेंगासूर, रेड्डीपेट, रोहट, रोहतक, रोहतास, रौंडा, रौनियाँ, लकाई, लखनऊ, लसा, लमाई, ललितपुर, लश्कर, लस्करी, लक्ष्मीपुरा, ल्याली, लाखनमाजरा, लादपुरा, लांबा, लामियां-लिलुआ, लीलापट्टीरनकटिया, लुकायन, लुधियाना, लोधापाटी, लोधीखेड़ा, लोसींगा, लोहाघाट, वघेला, वटवा, वड़कुई, वनकसिया, वभनगवाँ, वभनपूरा, वमनई, वरखेड़ा, वरचोली, वरणगाँव, वरुड़ (वायवट), वर्गगवाँखुर्द, वर्धा, व्रह्मावली, वरेथामठ, वरैनी, वसहिया, वहवोलिया, वानखेड़, वाराणसी, वारादाऊद, वालआँवालीनगर, वालाघाट, विक्रमगंज, विकाराबाद, विकुआकलाँ, विजयपुरा, विधौली, विजयवाड़ा, विद्रौर, विष्णुपुर (नेपाल), विष्णुपुर वृत्त, वीकापुर, वीरपुर, वुडेरा, वेरवई, वेलवा, वेहटा, वैर, वैरिहवा, शंकरनगर-रमना, शकरा, शमसेरगंज, शहडोल, शहरना, शहादे, शाजापुर, शामपुर, शाहजहाँपुर, शाहदरा, शाहपुर, श्यामपुर, श्यामविहारीनगर, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिंदे, शिमला, शिरपुर, शिराटोड़, शिववक्सखेड़ा, शिवपुरा, शिवरीनारायण, शुजालपुर, शोधी, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीनाथपुर, श्रीमाधोपुर, श्रीरामपुर, संगमनेर, संग्रामगढ़, संझौली, सकरवा, सक्ती, सतवाष्प, सथवल, स्थाणा, सदरपुर, सधवानी, सनावड़ा, सपरुन, समस्तीपुर, सभेसर, सम्बलपुर, सरकड़ाखास, सखतखानी, सर्वजीतपुर, सरसपुर, सरसीवां, सरहना, सराडा, सराफा, सरायनन्दन, सरायसैफ, सलापड़, सलारपुर, सहनपुर, सहरसा, सहार, सहारनपुर, सहावर, साइन, सागर, सागवाड़ा, सातोजोंगा, सावरमती, साम्बे, सारी, सालमगढ़, सासाराम, साहापुर, साहिया, सिंगरायपुर, सिंधनूर, सिरौज, सिअरुआँ, सिकन्दराबाद, सिकराली, सिकरिया, सिजई, सितारगंज, सिरसौद, सिरहौल, सिराली, सिलीगुड़ी, सिवनी, सिहोरिया, सीकर, सीतामऊ, सीतामढ़ी, सोनखेडा, सीरपुरकागजनगर, सोही, सुगौली, सुन्दरगढ़, सुन्दरनगर, सुन्दरपुर, सुपौल, सुमाड़ी, सुयालवाड़ी, सुरहा, सुरेन्द्रनगर, सुरेरी, सुलह, सुल्तानगंज, सुल्तानपुर, सूलिया, सेंजपुरिया, सेऊ, सेखुई, सेमरोल, सेमरौता, सेमरौर, सेमलिया, सेरुकांही, सेरौ, सेलेम, सेल्दर, सेवा, सैलाखुर्द, सोनखेड़ी, सोरपुर-उमरन, सोजतनगर, सोनई, सोनकच्छ, सोनदा, सोप, सोरमपुर, सोहागपुर, सौड़खुर्द, सौरी, सौली, हजारीबाग, हड्ड, हत्था, हमदापुर, हमीरपुर, हरखपकड़ी, हरचन्दपुर, हरदा, हरदी, हरलाखी, हरई, हरीटोला, हरिखीरा, हरिहरपुर, हरीपट्टी, हरीपुर, हल्द्वानी, हलोवाली, हसुवा, हाटपोखरिया, हाटी, हाजीपुर, हाथरस, हाफां, हावड़ा, हाँसोपुर, हास्तरा, हिंगनघाट, हिन्तू, हिमायूपुर, हिरमन-टोला, हिसार, हुसैनपुर हमीर, हैठीवाली, हैथारघुनाथपुर, हैदराबाद, होरमा, होशंगाबाद, होसपेट ।

—नामजप-विभाग, पो॰ गीताप्रेस (गोरखपुर)

अमृत-बिन्दु

प्रातःकाल उठनेसे लेकर शयनकालतक थोड़ी-थोड़ी देरसे (हो सके तो कम-से-कम १०८ बार) भगवान्‌को प्रणाम करके द्रवित हृदयसे कहें—'हे प्रभो ! ऐसी कृपा करें कि मैं आपको कभी न भूलूँ ।'

* * * *

जो अपने सम्पर्कमें रहनेवाले और आनेवाले बन्धु-बान्धवोंको सत्सङ्गमें लगाकर भगवत्प्राप्तिके मार्गमें सहायक बनता है—वही सच्चा हितैषी है ।

* * * *

भारी-से-भारी संकट पड़नेपर भी विशुद्ध प्रेमभक्ति और भगवत्साक्षात्कारके सिवा अन्य किसी प्रकारकी सांसारिक कामना, याचना अथवा इच्छा नहीं करनी चाहिये ।

* * * *

मृत्यु सिरपर मँडरा रही है, इसे याद रखते हुए सदा सावधानी रखनेपर पापकर्मोंमें प्रवृत्ति नहीं होगी ।

* * * *

वैराग्य, ज्ञान और ईश्वर-भक्तिका अहङ्कार भी कल्याण-मार्गमें बड़ा बाधक है ।

* * * *

शुद्ध प्रेममें स्वार्थ, अपने व्यक्तिगत लाभ और अपनेको भी सर्वथा भूल जाना पड़ता है ।

* * * *

संसारके विषयोंमें आसक्ति होनेसे आशाकी उत्पत्ति और तृष्णाकी वृद्धि होती है ।

* * * *

आप जिस वायु (श्वास)के आश्रित जी रहे हैं, वह प्रतिक्षण नष्ट हो रही है—कभी आपने इस स्थितिकी ओर भी ध्यान दिया है ?

* * * *

यदि अपनेको अच्छा बनाना हो तो राग-द्वेषको त्यागकर प्रत्येक व्यक्तिसे निःस्वार्थ प्रेम तथा प्राप्त पदार्थ और परिस्थितिका सदुपयोग करना चाहिये ।

* * * *

सभी दोषोंका मूल—स्वार्थभाव, अभिमान और कामना है और सभी गुणोंका मूल सेवाभाव, निरभिमानता तथा त्याग है ।

* * * *

भगवद्दर्शन, भगवत्प्रेम अथवा भगवत्प्राप्तिमें एक ही प्रबल त्रुटि है—उत्कट लालसाकी कमी । भगवत्प्राप्तिके साधनोंमें उत्कट इच्छाका होना आवश्यक है ।

(संकलित)

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गालियोंके बदले जीवन-सुधार

एक बार महात्मा बुद्धके पास एक व्यक्ति गया। उसने जाते ही तथागतको प्रणाम-अभिवादनके स्थानपर जी भरकर गालियाँ दीं, पर बुद्धपर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ा, वे अविचलित रहे। जब वह व्यक्ति गालियाँ देते-देते थक गया, तब गौतम बुद्धने उससे पूछा—'तुम्हारे पास तुम्हारे रिश्तेदार या अतिथि (मेहमान) आदि कभी आते हैं ?' उस मूर्खने कहा—'हाँ, अवश्य। प्रायः आते ही रहते हैं।' बुद्धने उससे पुनः पूछा—'जाते समय क्या तुम उन्हें कुछ देते हो ?' उस व्यक्तिने कहा—'अवश्य, जाते समय मैं उन्हें बहुत-सा उपहार दिया करता हूँ; किंतु वे उन्हें स्वीकार नहीं करते।' इसपर भगवान् बुद्धने प्रश्न किया—'जब वे उपहार नहीं लेते तो फिर वे वस्तुएँ कहाँ जाती हैं ?' उस अशिष्ट व्यक्तिने झल्लाकर कहा—'वे वस्तुएँ कहाँ जाती हैं ? अरे ! वे वस्तुएँ मेरे पास ही तो रह जाती हैं।' तब भगवान् तथागतने बड़े शान्त तथा मधुर स्वरोंमें उस व्यक्तिसे कहा—'महामते ! फिर तो तुम्हारी दी हुई वस्तुएँ अर्थात् ये गालियाँ भी मुझे स्वीकार नहीं हैं। अतः इन्हें तुम अपने पास ही रखो।' इसपर उस अविवेकीकी आँखें खुल गयीं। उसे अपने कियेपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तत्काल उसने बुद्धसे क्षमा-प्रार्थना की।

बुद्धने उसे समझाया—'भाई ! जब मैं तुम्हारा कोई अपराध मानता ही नहीं, तो फिर क्षमा-प्रार्थना किसलिये ? तुम तो मुझे कुछ दे ही रहे थे, किंतु मैंने ही उसे ग्रहण नहीं किया। अब तुम कोई सोच न करो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।' उस दिनसे वह व्यक्ति गौतमबुद्धका अनुयायी हो गया।　　—शिवचरणसिंहजी चौहान

(२)

यह भी रिक्शा-ड्राइवर

मैं अक्टूबर १९७६में दिल्ली अपने बड़े भाईके यहाँ गया था। वहाँसे हरिद्वार-ऋषिकेश जानेके लिये निकला। मेरे पास बटुएमें लगभग एक सौ पचास रुपये थे। बसमें टिकट लेनेके पश्चात् पर्स मैंने पेंटकी जेबमें रख लिया। हरिद्वार उतरकर एक साइकिल-रिक्शावालेको बुलाया और 'हरि-निवास' होटलमें ले चलनेको कहा। होटल पहुँचनेके पश्चात् मैंने उसे रोक रखा; क्योंकि होटलमें कमरा लेकर सामान रखकर मुझे पुनः बस-स्टैंड लौटना था। उस समय दिनके लगभग २ बजे थे और ढाई बजे 'हरिद्वार-सिटी-बस' हरिद्वारके दर्शनीय स्थलोंके दर्शन कराने हेतु बस-स्टैंडसे छूटती थी। मैंने कमरा ले लिया और रिक्शावालेको अग्रिम भाड़ा देनेके लिये जेबमें हाथ डाला तो पर्स नहीं मिला। मैंने होटलवालेको अपनी परिस्थिति बतायी। उसने कमरेका भाड़ा कुछ कम कर देनेका वचन दिया। अब तो हाथ रोककर पैसा खर्च करना था। अभी ऋषिकेश भी जाना शेष था। मैंने बस-स्टैंड पैदल जानेका विचार किया। बाहर आकर मैंने रिक्शेवालेको यहाँतक ले आनेका किराया देते हुए रिक्शेद्वारा जानेमें अपनी असमर्थता बता दी।

रिक्शेवालेके हृदयमें न जाने क्या आया कि उसने तुरंत ही अपनी जेबसे तीस रुपये निकाले और मुझे देते हुए कहा—'साहब ! लीजिये ये पैसा और बैठ जाइये। मैं आपको बस-स्टैंड छोड़ देता हूँ। मनुष्य मनुष्यके काम नहीं आयेगा तो कौन आयेगा ? और फिर आप तो परदेशी हैं, इसलिये भी मेरा यह कर्तव्य है।' उससे पैसे लेना नहीं चाहता था, परंतु वह नहीं माना। अन्तमें मुझे रुपये लेने पड़े। तत्पश्चात्

मैं ऋषिकेश गया और वहाँसे दिल्ली पहुँचकर मैंने उसे ५१ रु० (तीस रुपये उधार लिये थे और इक्कीस रुपये पुरस्कार)का मनीआर्डर किया। परंतु कुछ दिनों पश्चात् मुझे आश्चर्यमें डालते हुए २१ रु०का मनीआर्डर मेरे पास वापस लौट आया। कूपनमें लिखा था 'साहब! आपके पुरस्कारके लिये धन्यवाद। विना परिश्रमका पैसा मैं नहीं लेता हूँ। उस समय आपकी मदद करना तो मेरा कर्तव्य था।' यह भी एक रिक्शा-ड्राइवर था।

—नरेन्द्र नर्मदाशंकर दवे (अखण्ड आनन्द)

(३)

स्वप्नद्वारा पूर्वाभास या दैवी चेतावनी

मैं करीब २५ सालसे कलकत्तेमें रहता हूँ। घटना १९७४की है, जब मैं एक बैंकका कर्मचारी था। बैंकने मुझे एक गोदामपर काम करनेके लिये भेजा था। गोदामपर ही मेरे रहनेका भी प्रबन्ध था। मैं जलानेके लिये एक बोरामें कुछ कोयला रख दिया करता था और हमेशा उसमें हाथ डालकर उसमेंसे कोयला निकाल लिया करता था। एक रात मुझे स्वप्न हुआ कि कोई व्यक्ति मुझसे कह रहा है कि तुम सब कोयला बोरामेंसे बाहर गिरा दो, अन्यथा तुम्हारा जीवन नहीं बचेगा। मैंने सुबह उठकर स्वप्नपर विश्वास करके बोरा खाली कर दिया। जैसे ही बोरा उलटा किया, उसमेंसे एक बहुत बड़ा जंगली बिच्छू निकल पड़ा, जिसे देखकर ही मैं आतङ्कित हो गया। ऊपरके कमरेमें एक बंगाली डॉक्टर सज्जन रहते थे। मैंने उन्हें आवाज देकर उस बिच्छूको दिखाया। उन्होंने कहा कि यदि इस अत्यन्त विषैले बिच्छूने कहीं आपको डंक मार दिया होता तो दस मिनटके अंदर ही आपका प्राणान्त हो सकता था। परंतु बचानेवाला जब तैयार है तो कौन किसको मार सकता है। उसी दिन मुझे ईश्वर तथा ईश्वरीय शक्ति-पर पूर्ण विश्वास हो गया है। इस घटनाके बादसे मैंने भगवद्भक्ति तथा गीता-रामायणका पाठ आदि करना आरम्भ कर दिया है। भगवद्विश्वासमय जीवन बन जानेसे सब आनन्द है। —प्रसिद्धनारायण पाण्डेय

(४)

भगवान् आशुतोषकी कृपा

मैं चार्टर्ड-एकाउन्टेन्सी (सी० ए०) का एक छात्र हूँ। मैंने बी-एस्-सी० थर्ड डिवीजनसे पास किया था। आगे किसी भी कोर्समें प्रवेश न मिलनेके कारण विवश होकर मैंने सी० ए०को ही चुना। मैं ग्यारहवीं कक्षातक प्रथम श्रेणीमें पास होता रहा हूँ इससे मेरे मनमें गर्वकी भावना आ गयी थी। मैं भगवान्का भी काफी उपहास किया करता था। यानी कुल मिलाकर मैं पूरी तरहसे नास्तिक हो गया था। इसके साथ मेरा Academic career भी बिगड़ता गया। यहाँतक कि बी-एस्-सी० के बाद मेरी ऐसी स्थिति हो गयी कि मुझे कहींपर भी किसी भी कोर्सके लिये प्रवेश नहीं मिला। खैर, सी० ए० की प्रवेश-परीक्षा (Entrance-Examination)में बैठा, लेकिन दोनों बार असफलता मिली। मैं बहुत ही निराश हो गया। पूरी तरहसे हिम्मत हार चुका था। समझमें नहीं आता था कि क्या करूँ? इसी बीच मुझे ओंकारेश्वर जानेका मौका मिला। यह भगवान् शिवका एक पवित्र तीर्थस्थल है। यहाँपर पहली बार मैंने अपने अन्तस्तलसे प्रार्थना की और भगवान् शंकरजीसे दयाकी भीख माँगी। आखिर प्रभुने मेरी पुकार सुन ली तथा इसके बाद उस परीक्षामें मैं उत्तीर्ण हो गया तथा मुझे सी० ए०में प्रवेश भी मिल गया। इसके करीब डेढ़ साल बाद मैं सी० ए०की परीक्षा (इण्टर) में बैठा। मेरी तैयारी कोई विशेष नहीं थी। चार्टर्ड-एकाउन्टेन्सीके बारेमें यह सर्वविदित है कि इसके प्रश्नपत्र बहुत कठिन होते हैं तथा बहुत कम लोगोंको प्रथम बारमें सफलता हासिल होती है। उत्तर शुरू करनेसे पूर्व मैं प्रतिदिन अपने परम इष्टदेव भगवान् शिवको मन-ही-मन श्रद्धासहित स्मरण किया करता था। फिर भी मेरे दो प्रश्नपत्र काफी बिगड़ गये तथा मेरे पास होनेकी सारी

आशा धूमिल पड़ गयी। मैंने हारकर पुनः प्रभुकी शरण ली। अब मैं नित्यप्रति प्रातः-सायं मन्दिर जाता तथा भगवान् शिवसे आर्त स्वरसे प्रार्थना किया करता। प्रार्थना मेरी सकाम थी, अपने स्वार्थके लिये थी। मैं किसी तरह पास हो जाऊँ यही मुझे अभीष्ट था प्रार्थनाके साथ मैंने 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप करना भी आरम्भ कर दिया। रिजल्ट निकलनेके करीब एक हफ्ते पूर्व मुझे भयानक बुखार आने लगा। इसी बुखारमें मैं जब बेसुध था तो मुझे स्वप्न हुआ। स्वप्नमें लगा कि भगवान् शिव मुझसे कह रहे हैं—'तू चिन्ता न कर, पास हो जायगा। अब जल्दीसे मन्दिर जा।' जब मैंने आँखें खोलीं तो संध्या हो चुकी थी। उस भयानक बुखारमें भी मेरे अंदर न जाने कहाँसे इतनी शक्ति आ गयी कि मैं शीघ्र ही मन्दिर गया। उस समय भगवान्की आरती हो रही थी। मैं वहाँ आधे घंटेतक खड़ा रहा। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं अवश्य उत्तीर्ण हो जाऊँगा। अन्ततः परीक्षाफल मिला, भगवान्की कृपासे मैं पास हो गया। विशेष आश्चर्यकी बात तो यह है कि काफी बुद्धिमान् (इन्टेलिजेन्ट) माने जानेवाले लड़के रह गये। मैं इसे कल्याणस्वरूप, भगवान् सदाशिवकी अपने ऊपर महान् अहैतुकी कृपा मानता हूँ।

इस घटनाके पश्चात् मेरे आत्मबल तथा भगवद्-विश्वासमें वृद्धि हुई है। —एक भगवद्विश्वासी

(५)

साइकिल-सवार या देवदूत

बात दस वर्ष पुरानी है। लेकिन उसकी स्मृति आज भी मेरे मस्तिष्कमें ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। समाचारपत्रोंमें स्थानीय कालेजकी एक सूचना प्रकाशित हुई थी, उससे पता लगा था कि भौतिक विज्ञानसे प्रथम वर्गमें उत्तीर्ण हुए अभ्यर्थियोंको १८ जुलाई १९६८के दिन इन्टरव्यूके लिये प्रातः ९ बजे उपस्थित होना चाहिये। यह सूचना पढ़कर मैं दूसरे दिन प्रातः ५ बजे अपने गाँवसे बसमें बैठकर नगरमें पहुँचनेके लिये निकल पड़ा।

हमारी बस लगभग साढ़े आठ बजे शहरमें प्रवेश करनेसे पूर्व रेलवे-फाटकपर खड़ी हो गयी, क्योंकि फाटक अभी खुला नहीं था। मैं व्याकुलतासे फाटक खुलनेकी राह देखने लगा। घड़ीमें देखा तो ९ बजनेमें १० मिनट शेष थे। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने बसमेंसे उतरकर पैदल ही चलकर फाटक पार किया और रिक्शेकी तलाश करने लगा। मैं इतना भी नहीं जानता था कि कालेज यहाँसे कितनी दूर और कहाँ है। इतनेमें एक ग्रामीण फाटक पार करके साइकिल लेकर मेरे समीप आया। मैंने उससे पूछा—'भाई! क्या यहाँ कोर्ट रिक्शा नहीं मिलेगा? मुझे यहाँके कालेजमें प्राध्यापकके लिये इन्टरव्यू देने जाना है। वहाँ मुझे ९ बजे बुलाया गया है, परंतु ९ तो यहीं बज गये हैं।' इन्टरव्यूका नाम सुनते ही वह बोला—'आप मेरी साइकिलकैरियरपर बैठ जायँ, मैं आपको कालेज पहुँचाकर अपने कामपर चला जाऊँगा।' 'उस समय मुझे चाहे जैसे हो कालेज पहुँचना था, इसलिये किसी भी प्रकार आपत्ति किये बिना मैं साइकिलपर बैठ गया। बादमें जब मुझे थोड़ी शान्ति हुई, तब मैंने पूछा—'आपको कामपर जानेमें देर तो नहीं होगी····?' यह सुनकर उसने कहा—'मुझे देर होगी भी तो केवल एक दिनकी छुट्टी लेनी पड़ेगी, परंतु आपको देरी होगी तो पता नहीं कितने दिनोंकी छुट्टीमें रहना पड़ेगा।'

मेरा मस्तिष्क इन्टरव्यू कैसा होगा, इन्हीं विचारोंमें खोया हुआ था। कालेज पहुँचकर इस ग्रामीण भाईका दो-चार शब्दोंद्वारा धन्यवाद देकर कार्यालयकी ओर शीघ्रतासे चला गया। भगवत्कृपासे मैं इन्टरव्यूमें उत्तीर्ण हुआ और मुझे प्राध्यापककी नौकरी मिल गयी।

मुझे आज भी जब उस दिनका स्मरण होता है, तो मैं उस देवदूतको मन-ही-मन प्रणाम कर लेता हूँ।

—बी० जे० कापड़ी ('अखण्ड-आनन्द')

सम्मान्य ग्राहकों एवं प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

(१) 'कल्याण'के ५२वें वर्षका यह १०वाँ अङ्क है। आगे ११वें एवं १२वें अङ्कोंके प्रकाशित हो जानेके पश्चात् यह वर्ष पूरा हो जायगा। पाठकोंको गत अङ्कोंमें सूचित किया जा चुका है कि 'कल्याण'का आगामी—५३वें वर्षका विशेषाङ्क—'सूर्याङ्क' होगा। सूर्य धर्म (उपासना) और विज्ञान दोनों क्षेत्रोंमें ध्येय तथा ज्ञेय हैं। फलतः ज्ञान और उपासना—दोनों दृष्टियोंसे सूर्यसम्बन्धी बहुमूल्य सामग्रीसे युक्त 'कल्याण'की पूर्व-परम्परानुरूप यह विशेषाङ्क भी पठनीय, अध्ययनीय तथा संग्रहणीय होगा। भगवत्कृपासे विशेषाङ्कके सम्पादनका कार्य आरम्भ हो गया है। यदि कोई विशेष अप्रत्याशित व्यवधान न हुआ तो आशा की जाती है कि यह आगामी जनवरी (सन् १९७९) के प्रथम सप्ताहतक प्रकाशित हो सकता है।

(२) 'कल्याण'का वार्षिक-मूल्य आगामी वर्ष सन् १९७९के लिये भी पूर्ववत् १४.०० रु० ही रखा गया है। 'कल्याण'के सभी प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंको वार्षिक-मूल्य यथासम्भव शीघ्र भेज देना चाहिये। सदस्योंकी सुविधाके लिये मनीआर्डर-फार्म इस अङ्कके साथ भेजा जा रहा है। इस वर्ष भी पुराने ग्राहकोंको वी० पी० द्वारा अङ्क भेजनेमें कठिनाई रहेगी। **मनीआर्डरद्वारा अग्रिम वार्षिक मूल्य भेजनेवाले ग्राहकोंको ही अङ्क भेजनेमें प्राथमिकता दी जायगी।** बादमें अङ्क बचनेकी स्थितिमें ही वी० पी० भेजी जा सकेगी; डाकखर्च बहुत बढ़ जानेसे वी० पी० पी० वापिस होनेकी दशामें अब लगभग ४.००रु० प्रतिअङ्क 'कल्याण'की अवाञ्छनीय हानि होगी; अतएव नये-पुराने सभी इच्छुक ग्राहक सज्जनोंको वार्षिक मूल्य अग्रिम मनीआर्डरद्वारा भेजकर अपनी प्रति पहलेसे सुरक्षित करा लेनी चाहिये। रुपये भेजते समय मनीआर्डर-कूपनपर ग्राहक-संख्यासहित अपना पूरा पता—नाम, ग्राम, मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये। ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका नाम बादके नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। नये ग्राहक हों तो कृपया 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें।

(३) इस वर्ष भी सजिल्द विशेषाङ्क देनेकी व्यवस्था नहीं है, अतः कोई भी महानुभाव कृपया सजिल्द विशेषाङ्कके लिये मूल्य भेजनेका कष्ट न करें। सभी इच्छुक सज्जनोंको मात्र १४.०० रुपये अजिल्दका ही मूल्य भेजना चाहिये।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना अवश्य दे दें।

(५) किसी अनिवार्य कारणसे यदि 'कल्याण' बीचमें ही बंद हो जाय तो विशेषाङ्कमें ही वार्षिक-मूल्य समाप्त हुआ समझना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य १४.०० रुपये है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस (गोरखपुर)

एक आवश्यक सूचना

हमें कुछ ऐसी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं कि कुछ लोग 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकोंसे 'कल्याण'के नामपर चंदे या अन्य प्रकारकी सहायताकी अपील करके रुपये प्राप्त करते हैं। इस विषयमें हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'गीताप्रेस' या 'कल्याण'ने न तो चंदेके लिये कभी कोई अपील निकाली है और न हमें किसी प्रकारकी सहायताकी ही आवश्यकता है। इस प्रकारकी हमारी कोई माँग भी नहीं है। अतः ऐसी अपीलोंको सर्वथा अविश्वसनीय समझकर कृपया कोई भी सज्जन 'श्रीगोविन्द-भवन', 'गीताभवन', 'गीताप्रेस' 'कल्याण' या उससे सम्बद्ध किसी नामसे कोई धनराशि या आर्थिक सहायता आदि किसीको कदापि न दें और न यहाँ भेजें। इस विषयमें हम पहले भी निवेदन कर चुके हैं। व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

देवताओंद्वारा आदिशक्ति भगवती दुर्गाकी स्तुति

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी॥

(मार्कण्डेयपु० ८४। १४—१९)

(देवता बोले—) 'देवि! आप प्रसन्न हों। परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होनेपर जगत्का अभ्युदय होता है और क्रोधमें भर जानेपर आप तत्काल ही कितने कुलोंका सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभवमें आयी है; क्योंकि महिषासुरकी यह विशाल सेना क्षणभरमें आपके कोपसे नष्ट हो गयी है। सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिनपर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देशमें सम्मानित हैं; उन्हींको धन और यशकी प्राप्ति होती है, उन्हींका धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्योंके साथ धन्य माने जाते हैं। देवि! आपकी ही कृपासे पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकारके धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाता है, इसलिये आप तीनों लोकोंमें निश्चय ही मनोवाञ्छित फल देनेवाली हैं। मा दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो। देवि! इन राक्षसोंके मारनेसे संसारको सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकालतक नरकमें रहनेके लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गलोकमें जायँ—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओंका वध करती हैं। आप शत्रुओंपर शस्त्रोंका प्रहार क्यों करती हैं? समस्त असुरोंको दृष्टिपातमात्रसे ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं? इसमें एक रहस्य है—ये शत्रु भी हमारे शस्त्रोंसे पवित्र होकर उत्तम लोकोंमें जायँ—इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त कल्याणकारी रहता है।'